उपन्यास-बहार मासिकपत्र की दसवीं पुस्तक।

॥ श्रीः ॥

वीरवराङ्गना

वा

आदर्शललना।

(ऐतिहासिक उपन्यास)

काशीस्थ उपन्यास बहार आफिस के मालिक
बाबू जयरामदास ने उपन्यासप्रेमियों
के लिये रचकर प्रकाशित किया।

सिर्फ टाईटिल

॥ काशी ॥

हितचिन्तक प्रेम में बी. एल. पावगी
द्वारा मुद्रित।

प्रथमबार ११५०) (मूल्य ।)

१९०९ ई०

॥ श्रीः ॥

वीर-वराङ्गना

वा

आदर्श ललना ।

(एक अपूर्व ऐतिहासिक उपन्यास ।)

नवाबीपरिस्तान, काश्मीरपतन, शूरशिरोमणि, रौशनआरा मल्काचांदबीबी, रङ्ग में भङ्ग, फूलकुमारी, प्रभातकुमारी, कालाचांद, किशोरी, कलावती, चम्पा, मायारानी, भूतों का डेरा, लंगडाखूनी, चन्द्रशाला, चन्द्रलोक की यात्रा, बिनासवार का घोड़ा, इत्यादि उपन्यासों के रचयिता

काशीनिवासी

बाबू जयरामदास

रचित और प्रकाशित ।

॥ काशी ॥

भारतजीवन प्रेस में बाबू श्रीकृष्ण वर्म्मा द्वारा मुद्रित ।

1909



॥ श्रीः ॥

वीर-वराङ्गना

वा

आदर्श ललना।

पहिला परिच्छेद।

भूमिका।

सन्ध्या का समय है। हवा धीमी धीमी चल रही है। सूर्य्यनारायण अस्ताचल में प्रवेश कर चुके हैं। अब उनकी सुनहली किरणें बड़े और विशाल वृक्षों की चोटियों तथा आलीशान मकानों के गगनभेदी पताकों पर भी नहीं दिखलाई पड़ रही हैं। हां, अभी तक कहीं कहीं के बादलों पर कुछ कुछ सुनहलापन दिखलाई पड़ रहा है। इसके साथ ही उत्तर की तरफ से काले काले बादलों की डरावनी शक्लें गड़गड़ाहट के साथ उठ रही हैं। जो देखने में भी बड़े गजब की जान पड़ती हैं। कभी तो उनमें हाथी दिखलाई पड़ने लग जाती है, फिर दम की दम में वह गायब हो जाती है और उसके स्थान में एक भयानक वृताकार चीता मुंह खोले दौड़ता आता दीख पड़ने लग जाता है। कभी बादलों से कुछ, कभी कुछ, कभी डरावनी, कभी मन बहलावनी, कभी भयावनी कभी दहलावनी शक्लें बन बन कर संसार को चकित करने के साथ ही प्रकृत की अद्भुत छटा का निदर्शन करा रही हैं।

ऐसे ही समय में होड़ी राज्य के राजाप्रसाद के बगल-

वाली रमणीय वाटिका के मध्य में जिसमें नाना प्रकार के रंग बिरङ्गी फूल खिले हुए हैं और जिनकी सुगन्ध की लपट दूर दूर तक फैली हुई है, एक बालक और बालिका खेल रहे हैं। बालिका अति सुकुमार कोमलाङ्गिनी अद्वितीया सुन्दरी है। इसकी अवस्था लगभग दस वर्ष के होगी। इसके सुन्दरता की प्रशंसा करना व्यर्थ जान कर सिर्फ हम इतना ही लिखे देते हैं कि यह देवी मालूम होती है और ऐसा जान पड़ता कि मानों किसी देवी ने मनुष्य शरीर की प्रशंसा सुनकर इस ससार में आजन्म धारण किया है। यद्यपि इसके शरीर में अनेक बहुमूल्य आभूषण पड़े हुए हैं परन्तु इसके हाथ का अमूल्य हीरों से जड़ा हुआ कङ्कन बिचित्र ज्योति की अद्भुत छटा दिखला रहा है। ज्योंहीं वह हाथ को हरकत देती है त्योंहीं मालूम होता है मानों बिजली एक तरफ से दूसरे तरफ को दौड़ गई। अस्तु,

बालक भी किसी प्रकार सुन्दरता, सुडौलता और सुघरता में किसी से कम नहीं है। यद्यपि इसकी अवस्था अभी केवल बारह वर्ष के होगी तथापि इसके चेहरे पर वीरता, क्षमता और साहस के चिन्ह पाये जा रहे हैं और ऐसा जान पड़ता है कि यह राजकुमार अपने युवावस्था में एक अद्वितीय वीर और पराक्रमी होगा।

अहा ! बालावस्था भी क्या ही चीज है। इसमें चिन्ता और क्लेश का तो चिन्ह मात्र भी नहीं दीख पड़ता है। देखिये पाठक देखिये ! कहां तो राजगृह में जन्म और कहां साधारण बालिकाओं की तरह मिट्टी का खेल।

बालिका बाग के एक जरा से ऊंचे वृक्ष के नीचे, मिट्टी पर बैठी घरौना बना रही है। कभी तो वह उसे बड़े

ध्यान से बनाती है, कभी कुछ समझकर उसे बिगाड़ देती है। पर फिर हँस पड़ती है और उसे बनाने लग जाती है। इसी प्रकार लगभग एक घण्टे के बनाव बिगाड़ के बाद वह उसे अपने मन माफिक बना सकी और उस तरफ से निश्चिन्त होकर वह कुछ सोंचने लगी कि एक तरफ से वही बालक दौड़ता कूदता, खेलता आया और उसने उस घरौने को लातों से रगड़ कर बिगाड़ दिया।

चट्ट ही बालिका का ध्यान उस बिगड़े हुए घरौने पर पड़ा। उसको बिगड़ा हुआ देखते ही वह विह्वल हो उठी यद्यपि उसने अपनी जबान से कुछ भी न कहा परन्तु उसकी आँखें डबडबा आईं और उसने बड़ी मुश्किल से आंसुओं को रोकने की चेष्टा की पर तौभी वे न रुके और गालों पर बह कर आही गये।

पहिले बालक, तो एक तरफ से कूदता दौड़ता हुआ आया था और घरौना बिगाड़कर हँसता हुआ चला गया था। पर, दस कदम जाकर वह बालिका की दशा देखने के लिये रुका। ज्योहीं उसने फिर कर उसके गुलाबी कपोलों पर आँसुओं की बूँदों को देखा त्योहीं वह लौटकर उसके पास आया और स्नेह से उसे पोंछने लगा। धन्य स्नेह ! ! !

आँसू पोंछने के लिये हाथ लगाते ही पहिले तो बालिका का दिल उमड़ आया पर बड़ी मुश्किल से वह दिलको रोकती हुई बोली, मानों चाँदी की घण्टी बजी:—"सत्येन्द्र !"

"हां बहिन !"

"देखो, तुम नित्य ही मेरा घरौना बिगाड़ देते हो, मैं आज माताजी से कहे बिना न छोड़ूंगी।"

"नहीं बहिन, ऐसा न करना।"

"नहीं भैय्ये, आज तो मैं अवश्य माताजी से तुम्हारी शिकायत करूँगी।"

"नहीं बहिन, ऐसा न करना, नहीं तो मैं रोने लग जाऊँगा।"

यह कहकर बालक कुछ उदास सा हो गया। भाई को उदास होते देखकर बालिका से रहा न गया उसने हँसने के साथ ही दौड़कर सत्येन्द्र का हाथ पकड़ लिया और अपने मधुर स्वर में कहा:—"अच्छा भैय्ये! तुम उदास मत होओ मैं माताजी से न कहूंगी।"

इसके बाद दोनों भाई बहन हाथ पकड़े हुए वाटिका में चारों तरफ दौड़ने और कूदने लगे। खेलते खेलते बालक हाथ छुड़ा कर आगे को, पिछवाड़े के दरवाजे की तरफ दौड़ कर छिप गया। पहिले बालिका भी उसी के पीछे पीछे दौड़ी गई, पर जब वह न दिखलाई पड़ा तो वह भय्ये भय्ये चिल्लाती हुई दरवाजे के बाहर निकल गई और वहां एक यवन ने उसे पकड़ लिया।

इस समय चारों तरफ अँधेरा फैल चला था। दूर के आदमियों के शक्ल की जरी जरी आभा मात्र दिखलाई पड़ रही थी।

बालिका और बालक को बाग में न देखकर दासियां बिकल होकर उठ खड़ी हुईं और चारों तरफ ढूंढ़ने लगीं। उधर छिपे हुए राजकुमार ने बालिका को बाहर से लौटते न पाकर वह भी तुरन्त बाहर निकल गया। देखा तो राजबाला को एक हृष्ट पुष्ट मनुष्य पकड़े लिये जा रहा है। यह देखते ही बालक के शरीर में जरा भी रुकने की ताब न रही, उसने पीछे

पीछे दौड़ कर एक बड़े पत्थर द्वारा उस मनुष्य के सिर पर प्रहार किया ।

यवन को अचानक चोट से चक्कर आ गया । वह राजबाला को छोड़ वहीं सिर थाम कर बैठ गया । इधर बालक ने दौड़ कर बालिका का हाथ पकड़ लिया और दोनों निर्भयता के साथ दौड़ते हुए फिर बाग में चले आये तथा दासियों के साथ राजमहल में चले गये ।

दूसरा परिच्छेद ।

झील की बहार ।

"वाह !"

"क्या कहना है ?"

"क्यों न हो ।"

"ऐसा सुरीला गला तो मैंने देखा ही नहीं ।"

"शाबाश !"

"खूब गाया ।"

"अच्छा तो तानसेनजी, एकाद् और भी इश्क में डूबा हुआ होने दीजिये ।

गज़ल ।

बैठे जो शाम से तेरे दर पर सहर हुई ।
अफसोस ऐ क़मर कि न मुतलक़ खबर हुई ॥
अरमान वस्ल योहीं रहा सोगये नसीब ।
आंख जो खुल गई तो एकाएक सहर हुई ॥
दिल आशिकों के छिद गये तिरछी निगाह से ।
मिज़गा की नोक दुश्मने जानी ज़िगर हुई ॥

पछताता हूं कि आंख अब तुमसे लड़ गई ।
बरछी हमारे हक़ में तुम्हारी नज़र हुई ॥
छानी कहां न खाक़ न पाया कहीं तुम्हें ।
मिट्टी मेरी खराब अबस दर बदर हुई ॥
ध्यान आ गया जो शामको उस जुल्फे रसा का ।
उलझन में सारी रात हमारी बसर हुई ॥

"वाह क्यों न हो शायर साहब ! वाह ! ! !"

सिंध प्रांत में वह खुशनुमा झील जो सिलवर लेक [Silver lake] के नाम से प्रसिद्ध है । जिसमें बल खाती हुई मौजें, हवा के जोर जोर बहने से उठ रही हैं । उसी में की एक सुन्दर और बड़ी नाव पर के, जिसपर एक बेतकल्लुफ तख्त बिछाया हुआ है और जो अपनी अनोखी सजावट के लिये डंका पीट रहा है, बैठे हुए वहां के घमण्डी बादशाह अहमदशाह ने उपरोक्त बातें कहीं ।

इस समय रात के एक पहर से ज्यादे बीत चुके होंगे । निर्मल पानी में आस्मान और सितारों का अक्स विचित्र छटा दिखला रहा है। चन्द्रदेव कभी तो अपने चमकीले चेहरे को बादलों के नकाब से छिपा लेते हैं और कभी उस नकाब को हटा कर संसार को प्रकाशमय बना देते हैं। चारों तरफ सन्नाटा छाया हुआ है। इन नाववालों के सिवाय झील में इस समय और कोई प्रकृति का आनन्द लूटने के साथ ही बहार की मौज लेता नहीं दीख पड़ता है।

झील के चारों तरफ दूर तक हरे भरे बेल बूटों और वृक्षों का सिलसिला चला गया है । और उनकी पत्तियों से छन कर आनेवाली चन्द्रदेव की रोशनी एक सफेद खिले हुए फूल की बहार दिखा रही है।

झील के बीचों बीच में वहां के बादशाह और उसके मुसाहिबों की नाव थी। उसपर के गानेवाले की लय में डूबी हुई सुरीली आवाज कभी तेज हो जाती है और कभी धीमी पड़ जाती है।

अहमदशाह एक ऐय्याश बादशाह था। इसलिये उसका दस्तूर था कि गरमी के मौसिम में वह राज्यधानी को छोड़ कर इस खुशनुमा झील के किनारे संगमरमर के बने हुए महलों में रहता और अपने दिन ऐशो आराम में बिताता था। अतएव, आज भी रात के समय वही राजशाही ठाठ से नाव में बैठा हुआ झील की बहार लूट रहा है। उसके दहिने तरफ वजीर की कुरसी है, बाईं तरफ दो तीन मुसाहिब बैठे हुए हैं और सामने की तरफ व पीछे हथियार बन्द शरीर रक्षक [Body Gaurd] हाथों में नङ्गी तलवार खींचे खड़े हैं। तख्त के नीचे सामने की तरफ दो तीन कव्वाल बैठे हुए गा रहें हैं। जिनकें शेरों से मस्त होकर अहमदशाह भी झूम रहा हैं।

जब कव्वाल ने ऊपर लिखी गजल को समाप्त की तो थोड़ी देर तक सन्नाटा छाया रहा फिर एकाएक अहमदशाह की नशा टूट गई और उसके मुंह से एकाएक ऊपर लिखी हुई वही बातें "वाह! क्यों न हो शायर साहब वाह!!!" निकल ही गया। उसके मुंह से शाबशी निकलनी थी कि चारों तरफ से कव्वाल के ऊपर वाह वाह की बौछार पड़ने लगी।

इसपर कव्वाल ने सब को बड़े अदब से सिर झुका झुका कर सलाम किया और अहमदशाह ने कहा:—"अच्छा तो अब किसी नाजनी के तारीफ के अशआर होने दो।"

"इस हुक्म की तो देर थी ही।" कव्वालों ने झूम झूम

कर बारी बारी से किसी सुन्दरी के तारीफ के अशआर गाने लगे। ये तमाम शेर ऐसे चुटीले, नुकीले और ऐसे लहजों में गाये जाते थे कि बादशाह बेकरार हो गया। ऐसा जान पड़ने लगा कि उसका दिल अब आपसे बाहर हुआ चाहता है। अन्त में लाचार होकर उसने अपने को सम्हाला और कव्वाल से पूछाः—"जिसकी तारीफ तुम लोग सुना रहे हो वह कौन थी?"

एक कव्वाल ने हाथ जोड़ कर कहाः—"जहांपनाह! थी नहीं बल्कि अभी मौजूद है।"

अह०। (आश्चर्य से) हां!

वही०। खुदावन्द!

अह०। तो क्या वह ऐसी ही हसीन है जैसा कि अभी अभी तुम लोगों ने बयान किया है।

वही०। हुजूर! बिलकुल ऐसी ही बल्कि इससे भी बढ़ चढ़ कर।

अह०। क्या ऐसा?

वही०। (हाथ जोड़ कर) गरीबपरवर!

अह०। फिर तो गजब की हसीन है, क्या वह कोई रानी है?

वही०। जहांपनाह का ख्याल बहुत ही दुरुस्त और सही है।

अह०। क्या तुमने उसे अपनी आंखों देखा है?

वही०। (हाथ जोड़ कर) बन्दहनेवाज!

अह०। कैसे? तुम वहां कैसे गये और तुम उसको कैसे देख सके।

वही०। जहांपनाह! अरसा तीन साल का हुआ कि

जब इस बन्देने दरबार आली से छुट्टी लेकर मुसाफिरत अ-ख्तियार की थी। उन्हीं दिनों में यह गुलाम एक रोज शाम के वक्त घूमता घूमता एक शाही खुशनुमा बाग के पास जा निकला। देखा तो उसी में से नूर का एक टुकड़ा चला आ रहा है (इसके बाद की बातें उसने अपनी सफाई दिखाने के लिये छिपा रक्खीं)।

अह०। (एक सर्द आह खींच कर) आह, क्या उसका नाम भी तुम्हें मालूम है।

वही०। (हाथ जोड़ कर) उसका नाम हुजूर "कन-कलता है।"

अह०। (धीमें से) ऐसा नाम तो मैंने शायद कभी सुना है। अच्छा तो वह किस राजा की बेटी है?

वही०। हुजूर वह होड़ी के राजा की लड़की है।

अह०। हां ठीक! होड़ी के राजा पर्बतसिंह की बेटी! (मन्त्री से) क्यों होड़ी का राजा तो पर्बतसिंह है न?

मन्त्री०। (खड़ा होकर) हां जहांपनाह! वहां का राजा पर्बतसिंह है।

अह०। अभी तो शायद उसकी शादी नहीं हुई है।

क०वा०। नहीं हुजूर, मगर मंगनी होने वाली है।

अह०। अच्छा, अगर वह सचमुच वैसी ही हुई, जैसा कि तुम लोगों ने सुनाया है। तो मैं उससे जरूर शादी करूंगा और तुम लोगों को माला माल कर दूंगा। और कहीं खुदा-नख्वास्ता वैसी न हुई तो यहीं तुम्हारा सर तन से जुदा करा दूंगा। जाना!

कवा०। बेशक हुजूर!

इसके उपरान्त थोड़ी देर के लिये अहमदशाह सोंच-

सागर में डूब गया । फिर उसने बजड़े को किनारे की तरफ ले चलने को कहा ।

हुक्म की फौरन तामील की गई । बजड़ा धीरे धीरे राजमहल की तरफ बढ़ने लगा और उधर अहमदशाह भी फिर सोच सागर का गोता खाने लगा । इस समय उसके हृदय पटल पर मनमानी लहरें गिरती और उठती थीं और वह उन्हीं के उतार चढ़ाव में निमग्न हो रहा था ।

[illegible] तक जब तक कि खवास ने हाथ जोड़ कर यह न कहा:—"जहांपनाह !" उसकी चिन्ता न टूटी । अरदली के कहने पर वह लड़खड़ाता हुआ उठा क्योंकि शराब से भी बदमस्त हो रहा था और अपने निवास्थान की तरफ जाता दिखलाई पड़ने लगा ।

—:o:—

तीसरा परिच्छेद ।

विवाह का उद्योग ।

सिन्ध के इतिहास के देखने से ज्ञात होता है कि यद्यपि अहमदशाह एक बहादुर और सिपाही बादशाह हो गया है । परन्तु इसके साथ ही यह बातें भी मालूम हो जाती हैं कि वह विषय और बिलास के मैदान में मजनू और फरहाद से कम पैर नहीं मारता था प्रायः ऐशपसन्द लोगों के जल्सों में, उसके भोग और बिलास की नजीरें दी जाती थीं इसमें शक नहीं कि दुनियां के प्रत्येक लोग अच्छी चीज को पसन्द करने, सामर्थ्य के रहते तक लेने से बाज नहीं आते । पर सीमा के बाहर काम करने का हर जगह बुरा नतीजा

दिखलाई पड़ता है। अहमदशाह के हृदय में विषय के इतने उमङ्ग भरे हुए थे कि उसके सामने किसी सुन्दरी का जिक्र करना ही भर काफी था। जहां किसी ने किसी प्रौढ़ा वराङ्गना की प्रशंसा की तहां वह उसपर लट्टू हो जाता। जिन दिनों का बयान हम अपने इस उपन्यास में लिख रहे हैं, उन दिनों में इसका प्रताप-सूर्य्य खूब तपित हो रहा था, और इसकी तूती आस्मान के सातवें परदे पर बोल रही थी। इससे यह जिस बात का विचार करता उसे पूरा कर डालता, जिस लावण्यमयी के ऊपर दांत लगाता उसे अपने महल ही में ला छोड़ता। इसी प्रकार इसने यद्यपि कितनी सुन्दरियों को बल से, कितनियों को धन और कितनियों को लालच से ला रक्खा था तथापि इसकी तबीयत नहीं भरती थी जैसा कि नीचप्रकृत मुसलमान बादशाहों का दस्तूर है।

तुलसीदास के "काल दण्ड गहि काहु न मारा, हरै बुद्धि बल धर्म्म विचारा।" के अनुसार प्रसिद्ध है कि जिसके बिगड़ने के दिन आ जाते हैं वह दूरदर्शिता से हाथ धो बैठता है, विषय बिलास में इतना लिप्त हो जाता है कि उसको आगा पिछा दिखलाई ही नहीं पड़ता। यही दशा इस समय अहमदशाह की हुई थी, उसका दरबार इस समय विषय और बिलास की चीजों से खचाखच भरा हुआ था। कितने ही गोइन्दें सुन्दरियों का पता लगाने के लिये छुटे हुए थे और कितने ही कव्वाल उनकी तारीफें सुनाने के लिये नौकर थे। कव्वाल ने ऐसे बमानी लच्छेदार शेरों में उसकी तारीफ की थी कि झट उसका असर अहमदशाह के दिल पर हो गया।

महल में आने पर वह शयनागार में चला गया और

सोने के लिये बिस्तरे पर जा लेटा । पर नीन्द कहां ? रात भर वह करवटें बदलता रहा । या यों कहो कि बड़ी मुश्किल से उसने वह रात बिताई ।

प्रातःकाल हुआ, सूर्यभगवान ने अपनी प्रकाशमयी किरणों द्वारा जगत को प्रकाशमय बना दिया । ऐसे ही समय में आज नियम के प्रतिकूल अहमदशाह अपने प्राइवेट कमरे में बैठा दिखलाई पड़ रहा है और उसके सामने ही एक यवन सरदार हाथ जोड़े खड़ा है । अहमदशाह के सिर का शाही ताज, उसके सोंचसागर में डूबे रहने के कारण किसी कदर खसका हुआ है । उसके माथे पर चिंताके प्रस्वेदकी बूंदें अपनी झलक दिखला रही हैं, जिनसे साफ साफ प्रगट होता है कि वह किसी घोर चिन्ता का शिकार बन रहा है ।

इसी प्रकार थोड़ी देर तक सोंचसागर का थपेड़ खाते रहने पर अहमदशाह को होश हुआ और जब उसने ऊपर को आंख उठा कर देखा तो म्लेच्छ सरदार को सामने खड़े पाकर कहा:—"क्या तुम आ गये ?"

सर० । जहांपनाह ! बन्दा तो करीब एक घण्टे से खड़ा है !

अह० । (आश्चर्य से) क्या कहा ? एक घण्टे से !

सर० । (हाथ जोड़ कर) जहांपनाह !

अह० । मैंने तो तुम्हारे आने की खबर तक न जानी ।

सर० । (दस्तबस्ता होकर) हजूर तो ख्याल में महो हो गये थे इसी से.......

अह० । (बात काट कर और एक ठण्ढी सांस खींच कर) आह ! हां ठीक है । तुम तो जानते ही हो कि मावदी-

लत अपनी रियाया के साथ कैसा मुन्सफाना सलूक करते रहते हैं।

सर०। (हाथ जोड़ कर) बजा इरशाद। इसके लिये तो जहांपनाह तमाम दुनियां में मशहूर हुए जा रहे हैं।

अह०। यह भी तो तुम जानते ही हो कि रियाया चाहे किसी कौम की हो चाहे वह कोई मजहब रखती हो पर मावदौलत सब को एक निगाह से देखते हैं।

सर०। बहुत दुरुस्त! बहुत ठीक!

अह०। क्या कोई कह सकता है कि कभी मैंने किसी हिन्दु को फर्क या ताअस्सुब की निगाह से देखा है?

सर०। (कान पर हाथ धर कर) तौबा! तौबा—हरगिज नहीं, हरगिज नहीं!!!

अह०। अच्छा तो तुम परबतसिंह के पास जाओ और वह सब तमाम बातें उसके दिल में जेहन नशीन करा दो।

इस तमाम बातों का मतलब वह यवन सरदार जरा भी न समझ सका और उसके मुंह से एकाएक निकल गया:- "जहांपनाह! यह सब क्यों?"

अह०। (कुछ हँसकर) तुम नहीं समझ सके। इसकी यही वजह है कि परबतसिंह की हसीन लड़की की बेहद तारीफें सुनकर मेरी यह ख़ाहिश हुई है कि उससे शादी करके महल की ज़ीनत बढ़ाई जावे। यह सब तमात बातें उसे खूब मजे में समझा देना और यह भी कह देना कि जब वह मेरी ख़ाहिश को पूरी कर देगा तो उसे बहुत कुछ फायदा होगा। मेरी समझ में तुम्हें अब ज्यादे समझाने की जरूरत नहीं है। क्योंकि तुम तो ख़ुद ही एक दाना आदमी हो।

(उसके हाथ में एक खत देकर) अच्छा अभी रुखसत !

इसपर उस यवन सरदार ने झुक कर सलाम किया और फिर अपना मार्ग लिया।

चौथा परिच्छेद।

राजपूती दरबार।

जिस समय प्रलयङ्करी धूप दिनभर लोगों को तपा कर सन्ध्या के समय धीरे धीरे पयान करने लग जाती है, उस समय लोगों के हृदय में भी उसके पयान के साथ ही आनन्द की उमङ्गें उठने लग जाती हैं, उनका चित्त हरा और प्रफुल्लित होने लगता है, चित्त में अनेकानेक प्रकार की लालसायें तरङ्गें मारने लग जाती हैं,—हवा जो दिन में लू कही जाती थी, वही सन्ध्या होने पर लोगों को आनन्दित करने लगती है। धीरे धीरे धूप ने पयान किया; सन्ध्या होने को आई;-सूर्यभगवान की किरणें ऊंचे ऊंचे विशाल वृक्षों की शाखाओं पर लहराती दिखलाई पड़ने लगीं।

ऐसे ही समयसे, आज होड़ीके राजभवनमें दरबार लगा हुआहै, राजा पर्वतसिंह सुभूषित राज्यसिंहासन पर विराजमानहैं, और दरबारीलोग उनके चारों तरफ सिर झुकाये हुए अदबके साथ बैठे हुए हैं,—परन्तु इस सुसज्जित दरबार को लगे जिसका संक्षिप्त वृत्तान्त ऊपर लिखागयाहै लगभग एक घण्टे के हो गया है, अब सन्ध्या होने को आई परन्तु अभी तक दरबारमें चारों तरफ सन्नाटा ही छाया हुआ है। किसी के मुंह से चूं तक नहीं निकलती है।

राजा साहब के मुंह की तरफ अवलोकन करने से ज्ञात

होता है कि आज कोई विपरीत घटना हो गई है। उनका चेहरा रह रह कर तिलमिला उठता है, आंखें लाल हो गई हैं, मानों उनसे आग की चिनगारियां छठक रही हैं। कभी कभी उनका हाथ रत्नजटित तलवार के कबजे पर जा पड़ता है। किन्तु उपस्थितगणों में से कोई भी ऐसा नहीं है जो अभी तक इस कोप का कारण जान सका हो।

इसी प्रकार देर तक सन्नाटा छाया रहा। रह रह कर दरबारियों की निगाहें, डर के कारण कि कहीं मेरे ही किसी अपराध के कारण तो महाराज इतना आग भभूका नहीं हो गये हैं, राजा साहब के चेहरे को देखने और इसका कारण जानने के लिये उठती हैं और फिर देर तक देखने की ताब न रख कर नीचे को गिर जाती हैं और वे मनही मन प्रारम्भ से अपने कामों की अलोचना करने लग जाते हैं।

आखिरकार राजा पर्वतसिंह ने अपना झुका हुआ सिर उठाया और तमाम दरबारियों पर एक सरसरी नजर डाल कर जोशीली आवाज में कहाः—"आज तुम लोगों को मैंने केवल यही जानने के लिये विशेष कष्ट दिया है कि क्या तुम लोगों की नशों में भी वही पराक्रमी खून भरा हुआ है जो तुम लोगों के पवित्र अनुकरणीय पुरुषों के शरीर में जोश मारा करता था? क्या तुम लोगों में भी पित्रों की तरह क्षमता, पराक्रम और वीरता भरी हुई है? क्या तुम भी अपने पिता तथा दादा की तरह दृढ़प्रतिज्ञ होनेके साथ ही अपनी मर्य्यादा को जानसे भी बढ़ कर समझते हो?"

ऊपरोक्त शब्द ऐसे जोशपूर्ण वाक्यों से कहे गये कि सुनने पर प्रत्येक उपस्थित राजपूत अपने दिल पर ताब न

ला सका । सब के सब अपनी तलवारों को खींच कर खड़े हो गये और सभों ने एक स्वर से कहा:—

"ओह ! क्यों नहीं ? हम भी तो अपने वही पवित्र गौरवान्वित पराक्रमी राजपूतों की संतान हैं,—जिन्होंने अपनी मर्यादा के लिये, इज्जत के लिये, प्रतिष्ठा तथा बात के लिये अपने तन मन धन को दम की दम में न्योछावर कर दिया है । हम लोगों का यह अधम शरीर फिर भी तो उन्हीं पवित्र राजपूतों के खून मांस से बना है । हम लोग भी अपने आदर्श पित्रों की तरह मान, मर्यादा और बात के निमित्त प्रत्येक समय जान को न्योछावर करने के लिये हथेली पर लिये रहते हैं,—यह शरीर प्रत्येक समय श्रीमान् की आज्ञा पालन करने तथा श्रीमान् के चरण कमलों में समर्पित होने को प्रस्तुत रहता है ।"

यह कहकर तमाम दरबारियों ने सिर झुका दिया और राजा पर्वतसिंह ने गम्भीर शब्दों में कहा:—

"उठाओ ! वीर राजपूतो, अपने सिरों को उठाओ ! ! !"

ऐसा कहने के उपरान्त राजा पर्वतसिंह ने पास के राजपूतों के सिर पर हाथ फेरा और फिर स्वयं उठ कर उनके झुके हुए सिरों को उठाया ।

इसके पश्चात् राजपूतों ने पुनः एक स्वर से कहा:—
"धर्मावतार ! अभी तक इन बातों का मतलब हम लोगों की समझ में जरा भी न आया । क्या इन जान निसारों की तरफ से श्रीमान् को किसी प्रकार का संदेह हुआ है । यदि कोई ऐसी बात है तो (सभों ने सिर झुका दिया) यह सिर झुका हुआ है श्रीमान् फौरन जल्लाद को आज्ञा दें कि सिर तन से अलग कर दिया जाय ।"

पर्वतसिंह ने पुनः राजपूतों के झुके हुए सिर को उठा कर कहाः—"नहीं, नहीं, मेरे वीर राजपूतों ! ऐसा नहीं हुआ है। एक मामला ही ऐसा आ पड़ा है, जिसके कारण मेरे मुंह से ऐसे शब्द निकल गये। अच्छा ! तुम लोग अपनी अपनी जगह बैठे जाओ और मेरी बातों को ध्यान पूर्वक सुन कर जवाब देते जाओ।"

इतना कहने पर पर्वतसिंह की दृष्टि बाईं तरफ बैठे हुए मंत्रि पर पड़ी। तत्क्षण उसने अपनी जेब से एक खलीता निकाला और पर्वतसिंह ने आज्ञा दीः—"अच्छा ! तुम इसका विषय सब को सुना दो।"

यह सुनते ही मंत्री का हाथ कांपने लगा। फिर वह उठ खड़ा हुआ। उसने कई बार कुछ कहने की चेष्टा की परन्तु उसके मुंह तक शब्द आ आकर रह गये। बड़ी मुश्किलों से उसने अपने चित्त को सम्हाला और हाथ जोड़ कर कहाः—

"धर्मावतार ! मुझे आज्ञापालन में किसी प्रकार की रुकावट नहीं है, परन्तु श्रीमान् ! खत के लिखे हुए मजमून के सुनाने की मुझमें ताब नहीं है।"

पर्व०। यह तो बहुत ठीक कह रहे हो। परन्तु इसका मतलब भी तो सब पर जाहिर हो जाना परमावश्यकीय है। इससे तुम मेरी आज्ञा का पालन करो और इसे पढ़ो।

मंत्र०। महाराज की आज्ञा पलकों पर है, परन्तु शोक, ऐसे गन्दे वाक्य मेरे मुंह से निकलेंगे भला कैसे ?

पर्व०। इसकी कुछ भी चिन्ता न करो। समय पर सब कुछ करना ही पड़ता है।

यह सुनकर बूढ़ा मंत्री अपनी जगह पर अदब के साथ खड़ा हो कर पत्र सुनाने लगा। उसका मजमून यह थाः—

"चूंकि मैंने कनकलता के हुस्न व जमाल की अज-हद तारीफें सुनने के साथ ही यह भी सुना है कि जल्दी ही उसकी शादी होनेवाली है। इससे मुसम्मिम इरादा करके मैं यह खत लिखता हूं कि मैं अब बजाये उसके शौहर के उससे शादी करूंगा। यकीन है कि तुम भी इसे बखुशी मंजूर करोगे। मैं वादा करता हूं कि इसके एवज में जहां तक मुझसे बन पड़ेगा तुमक और तुम्हारी रियासतकी बेहतरी करूंगा। खुदा करे तुम खुशीसे मेरी बात को मान जाओ जिसमें कोई दूसरा जरिया अख्तियार करने का मौका न मिले.........

यहीं तक पढ़ते पढ़ते बूढ़ा वजीर विह्वल हो उठा, उसके आंखों से खून टपकने लगा, उसकी आवाज रुक गई। बड़ी मुश्किलों से उसने रुक रुक कर पत्रको समाप्त किया। जिसको सुनते ही तमाम उपस्थितों में बरदास्त करने की ताब न रही, सब की आंखों से चिनगारियां निकलने लगीं। एकाएक जो राजा ने चारों तरफ नजर उठा कर देखा तो तमाम दरबारियों को नंगी तलवार खिंचे हुए पाया।

पर्वतसिंह ने गम्भीरता के साथ कहाः—"आप लोग ठहरें, इतने अधिर्य न हों, जरा मुझे एक और प्रश्न करने का मौका दें।

यह सुनकर सभों ने सिर झुका दिया और पर्वतसिंह ने पूछाः—"अब मैं पूछता हूं कि आप लोंगों की क्या राय है? क्या पर्वतसिंह की वीराङ्गना-कन्या अहमदशाह के हाथ में जावे..........

अभी राजा पर्वतसिंह के मुंह से इतना ही निकला था कि प्रत्येक राजपूतों का शरीर क्रोध के कारण कांपने लगा,

उनकी आंखों से आग की लपटें निकलने, लगीं--बड़े जब्र से रूभों ने अपनी बेचैनी को सम्हाला और कहा:—

"बस, बस महाराज! बस!!! हमारे कान राज-कन्या की शान में ऐसे बुरे शब्द नहीं सुन सकते हैं,—अब हम लोगों में ताब नहीं है कृपा कर हम लोगों की प्यासी हुई तलवारों को अहमदशाह का खून पीने की आज्ञा दीजिये।"

यह सुनते ही पर्वतसिंह के चेहरे पर की छाई उदासी गायब हो गई। उनका दिल खुशी से फूल गया और उन्होंने चारों तरफ के बेचैन राजपूतों को देखकर कहा:—

"निसन्देह! वह समय आना ही चाहता है जब कि हमारी तलवारें धर्म्म, मान और मर्य्याद के लिये मैदान में निकलेंगी और ऐसे बली बादशाह का खून पीयेंगी, जिसकी तूती आज कल सातवें आस्मान पर बोल रही है। सम्भव है इस युद्ध का परिणाम..........

सम्पूर्ण राजपूतों ने एक स्वरसे पर्वतसिंह को बीचही में रोक कहा:—"इसकी हम लोगों के जरा भी चिन्ता नहीं है कि युद्ध का परिणाम क्या होगा। जब तक हम लोगों की जान में जान है तब तक अहमदशाह क्या उसकी रूह तक तो कनकलता की गर्द के पाही नहीं सकती।

पर्वत०। मेरे वीर राजपूतों! मुझे भी तुम लोगों से ऐसी ही आशा थी। अब हमारी आत्मा को शान्ति मिल रही है। अब तुम लोगों से सिर्फ इतना ही कहना है कि समयानुसार मसलहत देखकर ही काम करना चाहिये। यदि दुश्मन गुड़ से ही मर जाय, तो ज़हर देने की क्या जरूरत है।

इसपर एक ने जरा और आगे बढ़ कर कहा:—"तो क्या श्रीमान्! अभी मसलहत में ...

पर्व० । अब कहना सिर्फ इतना ही है कि अहमदशाह का जो पत्रवाहक आया है उसे साफ योहीं टाल दिया जाय और हम लोग अपने आहोर के दृढ़ दुर्ग में चलकर युद्ध की तय्यारी करें ।

यह सुनकर सभों ने सिर झुका दिया और एक स्वर से कहाः—"बहुत खूब !"

पांचवां परिच्छेद ।

प्रतिज्ञा बन्धन ।

रात सन्नाटी है । चारों तरफ घटाटोप अँधियारी छाई हुई है । काले काले बादल चारों तरफ से आस्मान को जकड़े हुऐ हैं जिससे दृश्य और भी भयावना हो रहा है । इस समय विचारे उन तारों का जो रातके समयके चलनेवाले पथिकों की बहुत कुछ सहायता किया करते थे, कुछ भी पता नहीं है । हां कभी कभी वृक्षों के ऊपर के निवास करने वाले पक्षीगण अपने घोसलों में चौंककर उस सन्नाटे को तोड़ देते हैं, जिनसे कुछ खटका सा हो जाता है ।

ऐसे ही समय में अपने प्रिय पाठकों को आज हम पुनः उसी शाही बाग में ले चलते हैं, जिसका उल्लेख प्रथम परिच्छेद में किया जा चुका है और जिसमें पाठकगण पहिले भी एक बार एक बालक और एक बालिका को जिसको कि आज लगभग चार बरस के हुए होंगे खेलते देख चुके हैं ।

यह महल से सटा हुआ बाग जितना ही देखने में छोटा था उतना ही रमणीय और सुखप्रद था । इस बाग में दिन रात चहल पहल रहा करती थी । इसमें जगह जगह

मनोहर और छोटे छोटे घर बने हुए थे जिनके चारों तरफ अतिसुन्दर और मनोहर हरे भरे बेल बूटे शोभायमान थे। इस बाग की बनावट ऐसी थी कि जो इसको देखता वही मोह जाता। प्रत्येक समय लोग इसका आनन्द लेने के लिये तरसा करते थे। परन्तु इस समय बाग में सन्नाटा छाया हुआ है। और कहीं भी कोई आदमी नहीं दिखलाई पड़ता है।

हां, महल के एक छोटे से कमरे में, जो इस बाग के ऊपर है, एक लम्प जल रहा है। और उसकी धीमी रोशनी खिड़कियों में लगे हुए शीशे के भीतर से छन कर बाग में आ रही है। उस कमरे के भीतर एक वराङ्गना रेशमी साढ़ी में अपने सुकमार गौराङ्ग शरीर को छिपाये हुए बैठी है। और उसके पास ही एक नवयुवा, जिसको शायद पाठकगण कल्ह दरबार में भी देख चुके हैं, सिर झुकाये हुए बैठा है। जिसके ढङ्गों से पाया जाता है कि मानों वह किसी घोर चिन्ता में निमग्न है।

वह कोमलाङ्गिनी थोड़ी देर तक तो नवयुवा राजपूत के चेहरे की तरफ बड़े आश्चर्य से देखती रही, पर फिर उससे न रहा गया और उसने अपने भाई सत्येन्द्र का हाथ पकड़ कर कहाः—"भय्ये।"

सते०। (चौंक कर) बहन!

कन०। आज तुम ऐसे उदास क्यों दीख पड़ते हो?

सते०। कुछ तो नहीं बहिन!

कन०। कुछ क्यों नहीं? तुम तो सोंचसागर में ऐसे डूब हुए थे कि तुम्हें मेरा आना तक न मालूम हुआ।

सते०। हां कुछ योंही सोच रहा था ।

कन०। तौभी तो उसका कुछ कारण होगा। साफ साफ क्यों नहीं बता देते ।

अब नवयुवा राजपूत से न रहा गया। एकाएक उसका चेहरा लाल हो गया उसकी आंखों से अंगारे निकलने लगे। यद्यपि उसने अपने क्रोध को रोकने की हजार चेष्टा की किन्तु फिर भी वह उसे न रोक सका। अपने भाई की ऐसी दशा देखकर कनकलता का आश्चर्य और भी बढ़ गया आखिरकार उसने आंखें डबडबा कर कहाः—"प्यारे भाई! हाय, यह क्या मामला है! हाय! ऐसी चिंता और फिर ऐसे भयानक क्रोध का कारण क्या है? प्यारे भाई! प्यारे भाई (रोकर) तुम्हारे ऐसे वीर हृदय रूपी आस्मान पर ऐसे शोक की घटा क्यों छाई हुई है? ईश्वर! इसमें कौनसा भेद छिपा हुआ है!!!"

सते०। बहिन! यद्यपि मैंने हजार चेष्टा की कि तुम पर इसका भेद प्रकट न हो सके, क्योंकि ऐसी ही इच्छा पिता जी की भी थी और इसी के लिये महल के तमाम सेवक और दासियों का मना कर दिया गया था। किन्तु बहन, तुम्हारे स्नेह के आगे अब मैं उसे नहीं छिपा सकता। बहन। क्या ही अच्छा हो कि तुम मुझे इसके लिये क्षमा प्रदान कर दो।

कन०। नहीं भाई! ऐसा न करो, क्या तुम्हारी कनकलता अब ऐसी हो गई जो तुम्हें उससे भी छिपाने की नौबत आ गई।

सते०। प्यारी बहन! समाचार बड़ा ही भयानक और आपद्पूर्ण है। इसी से मैं तुमसे माफी चाहता हूं।

कन०। प्यारे भाई ! चाहे वह कितनाही भयानक क्यों न हो, पर यह आपकी कनकलता सब कुछ सुनने और सहने की सामर्थ्य रखती है।

सते०। यह सब ठीक है। परन्तु बहन, तुम उसके सुनने की ताब न ला सकोगी।

कन०। प्यारे भाई ! तुम किसी तरह की चिन्ता न करो और न घबराओ। तुम्हारी बहन असाहसी नहीं है। इसकी उत्पत्ति भी उन्हीं वीरों के रक्त मांस से हुई है जिनकी वीरता के बयान में इतिहास के पृष्ट के पृष्ट भरेहुए हैं। यद्यपि वह अभी लड़की है परन्तु यह भयानक से भयानक आपदों को सहने तथा समाचारों को सुनने के लिये प्रस्तुत है। इस बात से तुमको विश्वास होना चाहिये कि वह कभी भी उस भयानक समाचार को सुनकर इतमिनान को हाथ से न दे बैठेगी।

सते०। अच्छा तो सुनोः—

यह कहकर सतेन्द्रसिंह ने अहमदशाह के पत्र आने इत्यदि का समाचार सुना दिया। जिसको सुनकर कनकलता मुस्कुरा पड़ी और बड़ी निर्भयता से बोलीः—"छिः इसके लिये चिन्ता करने की कौन सी बात है। इसका निबटेरा तो अभी अभी एक मिनट में हो सकता है। कनकलता तुम्हारे सामने खड़ी ही है, म्यान से तलवार खींच कर एकही वार में काम तमाम कर दो। तमाम झगड़ा दूर हो जायगा।"

सते०। यह क्यों ? यह क्यों ? भला किसी की मजाल क्या जो सतेन्द्र के जीते जी तुम्हारी तरफ आंख उठा सके।

कन०। किन्तु भाई ! जब एक मामला आसानी से तय हो जाय तो फिर खून बहाने की जरूरत ही क्या ?

सते० । बस अपनी जबान रोको । तुम्हारा सतेन्द्र ऐसा सुनने की ताब नहीं रखता । क्या वही तलवार जो तुम्हारी गरदन पर फिरने के लिये निकाली जायगी, वह अहमदशाह के गले पर न फिरेगी ? मेरी कनकलता की जान के लिये हजारों जानें उसपर न्योछावर हो जायंगी ।

कन० । प्यारे भाई, प्यारे भाई ! ऐसा न कहो । कनकलता की जान तुम्हारे आगे कुछ भी नहीं है । ईश्वर तुम्हें कुशलपूर्वक रक्खे । एक जीव के लिये ऐसा इरादा न सोंचो । न कलावती रहेगी और न अहदमशाह तुम लोगों की बुराई सोंचेगा । वह एक भारी बादशाह है, उसके पास असंख्य सेना है, धन, बल से उसे किसी प्रकार की कमी नहीं है । उसके देखते यहां कुछ भी नहीं है । न सैन्य है, न बल है । इसके अतिरिक्त आपस की फूट के कारण इसकी भी कोई आशा नहीं की जा सकती है कि दूसरे राजागण मेरी सहायता को आवेंगे । इन सब बातों को विचारते हुए यही अच्छा जान पड़ता है कि तुम मेरा खातमा करके सब झगड़ों से दूर हो जाओ ।

सते० । बहन ! तुम नहीं मानती हो । लो मैं ही चला जाता हूं ।

यह कहकर सतेन्द्रसिंह उठ खड़ा हुआ और चाहता था कि चल पड़े कि कनकलता ने डबडबाई हुई आंखों से पकड़ लिया और कहा:—"अच्छा, भाई बैठो ! बैठो ! भाई बैठो, अब मैं ऐसी बात अपनी जबान से न निकालूंगी ।"

यह सुनकर सतेन्द्रसिंह अपनी जगह पर बैठ गये और कनकलता ने पूछा:—"अच्छा तो तुम्हीं बताओ कौन सी तदबीर सोंची गई है ।"

सते०। (गम्भीरता से) तदबीर! वही तदबीर, जो ऐसे मौकों पर प्रतिष्ठित राजपूत लोग सोंचते हैं।

कन०। यानी ?

सते०। यानी कि उसकी जान लेना या अपनी जान देना।

कन०। लेकिन! प्यारे भाई, उसकी जंगी ताकत के सामने तो तुम लोग कुछ भी नहीं हो।

सते०। इसकी कोई चिन्ता नहीं। हमारी अकेली तलवार पचासों के लिये काफी है। एक एक वीर राजपूत सौ सौ म्लेच्छों को काट डालने की सामर्थ्य रखते हैं ?

कन०। आखिर, फिर भी कितनी देर तक ?

सते०। जब तक दम में दम है तब तक।

यह सुनते ही कनकलता के आंखों से आंसु चू पड़े और कुछ उसके कोमल गुलाबी कपोलों पर मोतियों की तरह चमकने लगे। जिनको देखते ही सतेन्द्रसिंह भी अधीर हो गये। पर, उसने बड़ी मुश्किलों से अपने को सम्हाल कर कहा:—
"हैं! हैं! प्यारी बहन! यह क्या ? तुम रोती क्यों हो ?"

कन०। (रोकर) प्यारे भाई! युद्ध का परिणाम सोंच कर मेरे रोंगटे खड़े हुए जाते हैं। इसी से चित्त भी कुछ अधीर सा हो गया है। काश कि मैं पैदा ही न हुई होती! या पैदा होते ही मर गई होती!!!

सते०। प्यारी बहन! राजपूत अपनी मान मर्यादा के लिये परिणाम का कुछ भी विचार नहीं करते। इसमें अधीर होने का कुछ भी काम नहीं है। यह संसार नश्वर है। इसमें जो जन्में हैं सब एक दिन मरेंगे ही। फिर सोंचने विचारने से फायदा ? बल्कि तुमको प्रसन्न होना चाहिये कि

तुम्हारा भाई अपनी प्रतिष्ठा को बिगाड़ने की इच्छा करनेवाले से युद्ध करने के लिये प्रस्तुत हो रहा है।

कन०। किन्तु—प्यारे भाई, सिर्फ मेरी जान के लिये मेरे घर पर इतनी आफत आनी चाहती है। हाय! केवल मेरे निमित्त मर मिटने के लिये तुम लोग तैयार हो रहे............

सते०। बस! बस! मुंह बन्द करो। तुम्हारा भाई इस बात को सुनने की ताब नहीं ला सकता।

यह कहकर वह उठ खड़ा हुआ। परन्तु कनकलता ने सिसकियां लेते हुए सामने आकर कहा:—

"अच्छा! तुम्हारी यदि ऐसे ही मंशा है तो सामने बलने वाली लक्ष्मी माता को मैं साक्षी देकर प्रतिज्ञा करती हूं कि अपनी आंखों के सामने अहमदशाह की लाश को लोटा कर ही सकूंगी।"

इसके बाद दोनों उस कमरे से निकले और अपने अपने शयनागार की तरफ जाते दिखलाई पड़ने लगे।

छठवां परिच्छेद।

दूत

दूत को लौटे हुए आज लगभग एक महीने के ऊपर हो गये हैं। अहमदशाह ने समझा था कि अब शादी का समाचार आना ही चाहता है। इसी आशा में, उसने खुशी खुशी एक महीने बिता दिये। किन्तु जब एक महीना के लगभग बीत गया तो उसके ख्यालात ने रँग बदलने शुरू किये। वह आनन्दमयी आशा निराशा से बदलने लगी,—वह खुशी का पहाड़ धीरे धीरे उलझन के वज्र से छिन्न भिन्न

होने लगा। लाचार होकर उसने प्रधान मन्त्री को बुलाया और कहाः—

"जनाब! कासिद को आये एक महीने के ऊपर हो गये मगर फिर तब से कोई खबर नहीं मिली"

यह सुनकर निज़ामुद्दौला (उसका नाम था) ने सिर झुका दिया और थोड़ी देर के बाद कहाः—"तो शायद जहांपनाह ने और कोई खबर नहीं सुनी है।"

अह०। (बड़े आग्रह से) क्या कोई शादी का पैगाम आ चुका है।

निज़ा०। (उदासी से) जी नहीं! शादी नहीं बल्कि बरबादी का पैगाम आ चुका है।

अह०। (आश्चर्य्य से) ऐं क्या कहा? बरबादी कैसी!

निज़ा०। (हाथ जोड़ कर) हुजूरवाला! उसने आहोर के किले में आकर किला बन्दी कर ली है। और लड़ाई के तमाम सामानों से लैस हो रहा है।

अह०। (विस्मित होकर) ऐं लड़ाई के सामानों से!

निज़ा०। जी हां। ऐसा ही सुनने में आया है कि वह दम रहते तक कभी भी कनकलता को आपके हवाले नहीं करेगा।

अह०। ऐं! क्या ऐसा?

निज़ा०। जी हां! इसके अलावे और भी सुनने में आया है कि फिर भी कनकलता हासिल नहीं होगी।

अह०। यह कैसे?

निज़ा०। शायद वह जल कर हस्ती को मिटा दे।

अह०। (कुछ चिन्तित होकर) राजपूतनियों में यह एक आले दरजे की गजब ढानेवाली हिक्मत है। मगर! नि-

जामुद्दौला, चाहे कुछ भी हो जाय । पर मैं अपने जीते दम तक उसे छोड़नेवाला नहीं। निजामुद्दौला! बात यह है कि जब से शायर ने मुझे उसके खूबसूरती की तारीफ सुनाई है तब से मेरा दिल अपने आप में नहीं है। रोज ही मैं उसका ख्वाब देखता हूं। ऐसा जान पड़ता है कि मानों उसकी तस्वीर मेरे सामने नाच रही है और मुझे बुला रही है।

यह सुनकर निजामुद्दौला चुप हो गया। उसने समझा समझाने से कुछ काम नहीं चलेगा। इसके सिर पर इश्क का भूत सवार है, यह इश्क में मतवाला हो रहा। इससे, इससे कुछ कहना फजूल होगा। आखिरकार उसने कहा:—"तो फिर हजूरवाला की क्या राय है ?"

अह०। (कुछ सोंच कर) तो फिर फौज-कशी करनी चाहिये।

निजा०। बहुत खूब।

यह कह वह सलाम कर लौट चला कि अहमदशाह ने पुनः आवाज देकर कहा:—

"क्यों निजामुद्दौला! क्या यह अच्छा न होगा कि फिर से एक कासिद भेजकर उससे उसकी राय का खुलासा मंगा लिया जाय,"

निजा०। बजा इरशाद! यह एक बहुत ही अच्छी काररवाई है।

इसके बाद एक कासिद बुलाया गया और अहमदशाह ने उसे बहुत तरह से समझा बुझा कर बिदा किया और फिर निजामुद्दौला ने भी अपना मार्ग लिया।

सातवाँ परिच्छेद।

तलवार।

सिन्धप्रांत में दुर्ग आहोर एक दृढ़ किला है। इसके फाटक तथा इसकी दीवारें बड़ी मजबूत और सुदृढ़ हैं। यह किला पहले बिलकुल सूना था और केवल नाम मात्र के थोड़े से सिपाही इसकी रक्षा के लिये इसमें रहते थे किन्तु थोड़े दिनों से, जब से कि अहमदशाह ने कुकर्म करने पर कमर कसी है, जब से कि उसने एक प्रतिष्ठित राजकुल पर, जो सिन्धप्रांत में महाराना उदयपुर की तरह प्रतिष्ठा, और मर्य्यादा की दृष्टि से देखा जाता था, क्योंकि इसके पूर्व पुरुषों ने भी महाराना प्रतापसिंह की तरह मुसलमानों से सम्बन्ध करने से साफ इंकार कर दिया था और पर्वतसिंह भी अपने पुरुषों की तरह दृढ़ प्रतिज्ञ और धर्मनिष्ठा से पूर्ण था,—कलङ्क लगाने की ठान ली है, तब से पर्वतसिंह इसी को चुनकर, अपने आत्मीयजनों के साथ, अपने वीरों तथा सरदारों के साथ इसमें रहने लगे हैं।

यद्यपि राजा पर्वतसिंह को किसी प्रकार से ऐसी आशा न थी कि हम अहमदशाह को समरभूमि में उसकी अपार सेना से उसे रक्षित रहने पर भी परास्त कर सकेंगे। किन्तु ऐसा होने पर भी उनका अटल चित्त जरा भी कम्पायमान नहीं हुआ था। वे पहिले ही की तरह अटल, धीर और दृढ़ थे। उन्होंने अपने दिल में दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली थी कि दम रहते तक कभी भी अहमदशाह की नीच मनोवांछा को पूर्ण न होने देंगे।

अपने इसी दृढ़ प्रतिज्ञा को सब पर प्रगट करने के लिये

आज पर्वतसिंह ने अपने दो हजार राजपूतों के साथ, जो हथेली पर जान लिये कमर कसे हुए हैं, दरबार किया हुआ है। दरबार के मध्य में एक ऊंचे सिंहासन पर राजपूत सर्दार पर्वतसिंह बैठे हुए हैं। उनके दहिने तरफ उनके वीरवर सुपुत्र सतेन्द्रसिंह, बाईं तरफ प्रधान सेनापति ठाकुर मानसिंह और उनके बगल में प्रधान मन्त्री विराजमान हो रहे हैं।

समस्त उपस्थित राजपूतों को आग्रह युक्त देखकर पर्वतसिंह ने सब को सम्बोधन कर कहाः—"जिस काम के लिये आप लोगों को कष्ट दिया गया है, वह सब तो आप लोगों को मालूम ही है। अब कहना सिर्फ इतनाही है कि दुष्ट अहमदशाह को हम लोगों की तैयारियां मालूम हो गईं। वह अब निश्चय ही चढ़ाई करेगा। इसी भेद को जताने के लिये उसने आज पुनः एक दूत भेजा हुआ है जो यह जानना चाहता कि हम लोगों का खास इरादा क्या है?"

यह सुनते ही ठाकुर मानसिंह का शरीर क्रोध से कांपने लगा। वह उठ कर कुछ बोलना ही चाहते थे कि समस्त राजपूत खड़े हो गये और एक स्वर से बोल उठेः— "क्या हम लोगों का अब कुछ दूसरा इरादा हो सकता है! हम लोग तो जान देने के लिये तैयार ही हुए हैं। यह बात हम लोग कभी भी गवांरा नहीं कर सकते और न दम रहते तक ऐसा होने दे सकते हैं कि प्यारी कनकलता पर कोई आंख उठावे, चाहे वह बादशाह ही क्यों न हो।

इसके बाद मानसिंह ने बड़ी मुश्किलों से अपने क्रोध को सम्हाला और कहाः—"वह दूत है कहां?"

सते०। क्या अभी तक वह जिन्दा ही है?

पर्व०। बहादुरों! क्रोध को सम्हालो, अपने से बाहर न होओ। गुस्से से अपने धर्म्म को न भूल जाओ। राजपूतों का यह प्रधान कर्म है कि चाहे वह कैसी ही हालत में क्यों न हों पर वे अपने धर्म पर आरूढ़ रहते हैं,—न्याय के विरुद्ध कोई काम नहीं करते। दूत को मारना राजपूतों का धर्म नहीं है।

मान०. यह सब बहुत ही यथार्थ है। परन्तु अब हमारा उत्तर तलवार के अतिरिक्त और क्या हो सकता है। अब हम लोगों में सहने की सामर्थ्य नहीं है,—बड़े खुशी से कहना पड़ता है कि अब हमारी तलवारों को जौहर दिखलाने का समय आ गया है। अब श्रीमान् को विशेष विचारने की अवश्यकता नहीं है। आखिर हम लोग हैं किस दिन के लिये?

एक सैनिक ने उठ कर कहा:—"दूत को दरबार में बुलाने की आज्ञा क्यों नहीं दी जाती! जरा हम लोग भी देखें कि वह किस हौसिले पर पैगाम लाया है। मेरी जान में अहमदशाह के पत्र के उत्तर में उसका सिर ही काट कर भेजना अच्छा होगा।"

पर्व०। नहीं, नहीं, ऐसा नहीं होना चाहिये। दूत का हौसिला ही कितना? वह तो अपने मालिक की आज्ञा के आधीन है। ऐलची को भूल कर भी मारना न चाहिये। यह बात बहादुरों की बहादुरी में धब्बा लगानेवाली है।

मान०। मुझे भी श्रीमान् की आज्ञा स्वीकार है परन्तु अहमदशाह को अब साफ जवाब दे देना चाहिये।

सते०। बेशक! (म्यान से तलवार खींच कर) उसको उत्तर में यही तलवार भेज देना चाहिये।

इसके बाद दूत बुलाया गया और सतेन्द्रसिंह की तलवार मय पत्र के देकर उसे बिदा किया गया ।

अठवां परिच्छेद ।

मधुर मंजुल ।

आहोरदुर्ग की विस्तृत चहार दीवारी के भीतर एक छोटा सा राजाप्रसाद है । प्रसाद के चारों तरफ विशेषतः पश्चिम की तरफ अनेक आन्दरवर्द्धक लतायें लगी हुई हैं, और वे हरी भरी होकर इतनी उमड़ पड़ी हैं कि उनको गुंजान झाड़ी कहना कुछ भी अरुचिकर न होगा । लताओं की झाड़ियां काट छांट कर इतनी सूघर और सुडौल कर दी गई हैं कि वे देखने में बड़ी ही भली जान पड़ती हैं । उनके नीले, पीले, लाल और सफेद फूल और भी गजब ढा रहे हैं । दूर से देखकर कभी कोई ऐसा गुमान ही नहीं कर सकता कि यह लताओं की टट्टियां हैं, वरन् देखनेवाले के मुंह से अनायास ही निकल जायगा कि आहा फूलों का क्या अच्छा पहाड़ बना हुआ है ।

उन लताओं की टट्टियों का दृश्य ऊपर से जैसा ही मनोरम है । उसके भीतर वैसे ही मनोहरता और रमणीयता छाई हुई है । लटकती लताओं को काट कर भीतर एक रम्य स्थान बनाया है, जो उनकी फूलों से बसा हुआ है । और उसी के नीचे उसकी बहार लूटनेवालों को बैठने के लिये एक पत्थर की तिरपाई रखी हुई है ।

इसी लता की टट्टी के भीतर एक युवती बैठी हुई है और वहीं एक युवा धीरे धीरे टहल रहा है । युवती सुन्दरी और किशोर अवस्था को पार कर चुकी है । युवा भी नौजवान और वीर जान

पड़ता है। थोड़ी देर तक चुपचाप टहलते रहने के उपरान्त युवा ने युवती का हाथ पकड़ लिया और कहा:—"मंजुला! देखो इतना दिन तुम्हें बहुत टाल मठोल करते हो गया। इसके अतिरिक्त आज बहुत दिन पर बातचीत करने का सुअवसर भी मिला है। सो अब तुम साफ साफ कह दो कि तुम्हें मुझसे ब्याह करना स्वीकार है या नहीं?"

यह बातें सुनकर युवती से, जिसका नाम मंजुला था न रहा गया। उसका शरीर कुछ डवांडोल हो गया और ऐसा जान पड़ने लगा कि यह भी युवक की भांति प्रेम फांस में फँसी हुई है। आखिरकार उसने कहा:—"प्यारे मधुर! मेरा इसमें क्या दोष है। पर संयोगों से लाचार हूं। तुम्हीं कहो? न मालूम किस बुरी साइत में मेरा तुम्हारा सामना हुआ कि उसी दिन से एकएक आफत सिर पर आने लगी है।

यह सुनकर मधुर जिसका पूरा नाम मधुरसिंह था सहसा विचार में पड़ गया और थोड़ी देर तक चिन्तित रहने के उपरान्त बोला:—"प्यारी! यद्यपि आफत के पहाड़ सिर पर हैं, परन्तु अब मुझसे रहा नहीं जाता। अब दो ही बातों में मेरा वारा न्यारा होने वाला है। इन "हां" और "नहीं" में जो तुम्हें मंजूर हो पसन्द कर लो, पर इसके साथ ही यह भी जान रखो कि तुम्हारे मुंह से "नहीं" निकलते ही मैं आत्म-हत्या कर लूंगा।"

मंजु०। हैं, हैं मधुरसिंह! तुम क्यों ऐसी कठिन समस्या उपस्थित कर रहे हो। यदि मैंने कदाचित् दूसरे ही शब्द को पसन्द कर लिया तो फिर तुम्हारे पिता मानसिंह तुम्हें इसके लिये न धिक्कारेंगे? क्या इस के लिये तुम्हें वे कायर न कहेंगे?

अब तो हमारे प्रिय पाठकगण भी समझ गये होंगे कि मधुरसिंह, पर्वतसिंह के प्रसिद्ध सेना नायक भानसिंह का लड़का है।

मधु०। इसकी मुझे जरा भी चिन्ता नहीं है। जो कुछ करने के लिये मैं उद्धत हुआ हूं यह सब लाचारी से है? प्यारी!—

मंजु०। (बात काट कर और उठ कर) प्यारे, अब बहुत देर हो गई। जाने दो, कल मैं अवश्य तुम्हें उत्तर दूंगी।

यह सुनते ही मधुरसिंह सामने आकर खड़ा हो गया और पुनः उसका हाथ पकड़ कर बोलाः—"नहीं प्यारी! आज बिना साफ उत्तर लिये मैं तुम्हें जाने नहीं दूंगा।"

मंजु०। नहीं प्यारे! आज जाने दो। कल मैं अवश्य उत्तर दूंगी। कारण कि, अब मेरा चित्त डवांडोल हो रहा है। कुंवरी जी के पूजन का समय बहुत ही समीप आ गया है।

मधु०। कैसा पूजन?

मंजु०। क्या तुम्हें नहीं मालूम है। आज, लगभग पन्द्रहके दिन के बीत चुके हैं। उन्होंने एक महीने का व्रत धारण किया है और नित्य सन्ध्या के समय शैलकुमारी गिरिराजनन्दनी अष्टभुजाधारिणी दुर्गामाता की पूजन को जाती हैं। प्यारे हाथ छोड़ दो। बिलम्ब होने से पूजन में विघ्न उपस्थित होगा।

मधु०। (और भी दृढ़ता से खड़े होकर) प्यारी! यदि तुम को बिलम्ब होने का भय है तो शीघ्र बचन दो और चली जाओ।

मंजु०। प्यारे कहना मान जाओ। जाने दो।

मधु०। बिना प्रतिज्ञा लिये मैं छोड़ने को नहीं।

नवयुवा मधुरसिंह की दृढ़ता देखकर मंजुला बड़े असमंजस में पड़ गई। उसने बिचारा, आज मैं बेतरह फँसी, बिना वचन लिये आज मधुरसिंह जाने देने को नहीं।

वह इन्हीं विचारों में डूब उतरा रही थी कि मधुरसिंह ने पुनः कहाः—"प्यारी! क्या तुम्हें यही मंजूर है कि मैं आत्महत्या ही कर डालूं।"

मंजु०। (अधीर होकर) नहीं, नहीं, स्वप्न में भी ऐसी मेरी इच्छा नहीं है।

मधु०। तब फिर वचन दो।

मंजु०। इसका उत्तर कल दूंगी।

मधु०। नहीं ऐसा कदापि भी नहीं हो सकता (ठहर कर) जान पड़ता है तुम्हारी यही इच्छा है कि मैं आत्मघात ही कर डालूं। सो लो—राजपूत कभी भी अपनी प्रतिज्ञा से नहीं टलते हैं।

यह कहकर वह युवक वहीं मंजुला की बगल में बैठ गया। तत्पश्चात् उसने अपनी बगल से एक कटार निकाली और चाहता था कि आत्म-समर्पण कर दें कि एकाएक मंजुला ने यह सोच कर कि एक स्वदेश भक्त वीर का प्राण योंहीं जाने चाहता है, उसका हाथ पकड़ लिया उसने पूछाः—

"यह क्यों?"

मंजु०। योंहीं।

मधु०। क्या तुम्हें अब वचन देना स्वीकार है।

मंजु०। निस्सन्देह। परन्तु—

मधु०। (बात काट कर) परन्तु क्या?

मंजु०। परन्तु यही कि जिस समय तुम अहमदशाह का

सिर काटकर मेरे सामने लावोगे उसी समय मैं तुमसे बिवाह कर लूंगी ।

मंधु० । (प्रसन्नता और गम्भीरता से) बहुत खूब ! यद्यपि यह कार्य्य कठिन और असाध्य है तथापि मैं यथासाध्य इसको पूरा करूंगा या वीरगति को प्राप्त हो कर उस जन्म में तुमसे मिलूंगा ।

यह कहकर युवा मधुरसिंह उठा और वहां से एक तरफ को चला गया । इधर स्वदेश प्रीतिपूर्ण वीरबाला मंजुला भी राजकुमारी कनकलता की सेवा में उपस्थित हुई ।

नवां परिच्छेद ।

नीच न छोड़ें नीचता ।

दुष्ट अहमदशाह नित्य दूत के लौटने की बाट देख रहा था ।—बैठे बैठे दिन गिन रहा था, रात करवटों से बदल रहा था । उसकी आंखों में नींद का नाम तक न था । वह दिन रात यही सोंचा करता कि देखें इस बार दूत क्या समाचार लाता है, देखें पर्वतसिंह कैसा उत्तर भेजता है । वह विचार के तारों में इतना उलझ गया था, वह प्रेम के मद में इतना मतवाला हो गया था कि उसे इस बात की जरा भी चिन्ता न थी कि पर्वतसिंह राजपूत घराने का है, उसका कुल प्रतिष्ठित तेजमान और वीर्यशाली है । वह प्राण रहते तक कनकलता को देने की बात तक नहीं करेगा। उसके वीरराजपूतों में से जब तक एक भी जिन्दा रहेगा तब तक वह कनकलता की तरफ देखने तो देगा ही नहीं । इसके अतिरिक्त उस दुष्ट को इसका जरा भी ख्याल न था कि

कनकलता एक वीर और धर्म्मनिष्ठा राजपूत की कन्या है। यों तो साधारण राजपूतनियां म्लेच्छोंको छूना तक नहीं चाहतीं फिर ऐसे वीर, ऐश्वर्य्यशाली और प्रतापवान राजपूत की कन्या होकर क्या वह म्लेच्छों के महल में आना पसन्द करेगी? सत्य है जैसा कि तुलसीदासजी कह गये हैं कि "काल दण्ड गहि काहु न मारा, हरै बुद्धि बल ज्ञान विचारा।" यही दशा इस समय दुष्ट अहमदशाह की हो गई है। वह दूरदर्शिता को खोकर इश्क का मतवाला हो रहा है और विचारों के समुद्र के लहरों का खूब थपेड़ खा रहा है।

आज भी वह दरबार आम में शाही लिबास पहिने बैठा हुआ विचार के लहरों का शिकार बन रहा था कि सामने से दूत आता दिखलाई पड़ा जिसके साथही वह प्रसन्न हो उठा और बोलाः—"अहा! तुम आ गये? कहो सब खैर तो है?"

यह सुनकर दूत ने सिर झुका दिया और कुछ न कहा।

अह०। (कुछ विस्मित होकर) बोलो, बोलो कैसी खबर लाये?

दूत को इस बार कुछ साहस हुआ। उसने म्यान से तलवार निकाल कर अहमदशाह के आगे रख दिया। जिसको देखते ही वह चौंक उठा,—उसकी उम्मेदों का खून हो गया। वह चेहरा जो किसी आशा में कभी कभी चमक उठता था,—एकाएक तलवार देखने से मलीन हो गया। उसकी सारी आशायें मिट्टी में मिल गईं। पर इसके साथही उसके हृदय में प्रेम के स्थान में क्रोध का आविर्भाव हुआ,—वह दिल में जो किसी आशा में निमग्न हो रहा था, क्रोध की ज्वाला से दहकने लगा। उसकी लपटों से उसकी आंखें लाल हो

गईं, शरीर थरथराने लगा,—जिसके साथ ही उसके मुंह से निकल गयाः—"हैं, उसकी इतनी जुरात! ओह! मगरूर ने किस घमण्ड पर ऐसा किया है।"

फिर वह दूत से बोलाः—"क्या तुम्हें उसने कोई खत भी दिया है?"

उसने उत्तर दियाः—"हां, जहांपनाह! चलती वक्त वहां के मीरमुंशी ने एक खत भी दिया था।

यह कहकर उसने एक बन्द पत्र अहमदशाह के पैरों के पास रख दिया! तदनन्दर वही गुलाबी आँखें वहां के प्रधान मन्त्री की तरफ मुड़ी। उनने उसका अभिप्राय समझ कर लिफाफे को उठा लिया। और उसको फाड़ कर उसमें से एक पत्र निकाला, जो उस जमाने की रिवाज के मुवाफिक फारसी जबान में लिखा हुआ था। पाठकों की जानकारी के लिये उसकी नकल हम नीचे लिखे देते हैं।

ओ दुष्ट बादशाह!

तेरे दोनों पत्र मिले। पहिले का तो किसी खास गरज से उत्तर नहीं दिया गया था किन्तु आज साफ लिख देने के साथ ही एक तलवार भेजे देते हैं। समझ ले! जब तक एक राजपूत को भी उसके थामने की सामर्थ्य रहैगी तब तक तू कनकलता को पा नहीं सकैगा। ऐ अदूरदर्शी बादशाह! जान पड़ता है तू अब शीघ्र ही जहन्नुम को जाना चाहता है। तू अपनी सैना, बल और राज के घमण्ड में भूला हुआ है। और मुझे कमजोर और अपने सामने के योग्य न देख कर जबर्दस्ती कनकलता को शादी करने के लिये चाहता है। पर ऐ घमण्डी! याद रख, तेरी यह मंशा प्रलय तक कामयाब न होगी, एक कुलीन प्रतिष्ठित हिन्दू जान देना

स्वीकार कर लेगा किन्तु अपनी प्रतिष्ठा पूर्ण बालिका को देना मरते दम तक, कभी भी स्वीकार न करैगा। बस तेरे लिये इसी में भलाई है कि "आगे से तू कनकलता को अपनी लड़की की तरह ख्याल कर। नहीं तो तलवार ले कर समर-भूमि में आ।" ....पर्वतसिंह।

मद में माते हुए अहमदशाह की आंखों में इतना सुनते ही खून उतर आया। उधर पर्वतसिंह की दृढ़ता देखकर तमाम दरबारी चकित और स्तम्भित हो गये। किसी की जबान से चूं तक न निकला सका।

अहमदशाह क्रोध भरी हुई आवाज में बोलाः—"हैं इतना होसिला! नादान, मेरी ताकतों को जान कर भी भूलता है। जान पड़ता है मौत उसके सिर पर नाच रही है। मगरूर, काफिर! तेरी शेखी मैं मिट्टी में न मिला दूं तो मेरा नाम अहमदशाह नहीं। तू मेरे इरादे को रोकनेवाला कौन? काफिर! मलून! तेरी गरदन होगी और मेरी तलवार। (दरबारियों की तरफ देखकर) देखो न बदमाश की ढिठाई! खत लिखने के वक्त मलून को अपनी जान तक का ख्याल न आया।"

अहमदशाह की क्रोधाग्नि भड़की हुई देखकर तमाम दरबारी कांपने लगे। सब के दिल में यही ख्याल आने लगा कि कहीं मैं ही न इस क्रोधाग्नि की भड़क में जल जाऊं। इतने ही में अहमदशाह ने उसी लाल डरावनी आंखों से सिपहसालार की तरफ देखा। वह कांप उठा। और खड़ा होकर हाथ बांध कर बोलाः—"जहांपनाह! इरशाद!

अह०। (तड़प कर) अब इरशाद क्या? फौज कशी! उसकी गरदन और मेरी तलवार!

सिप० । फिर जाननिसारोंको उजूड़ी किस बात का है ?

अह० । बस ! एक दम चढ़ाई । तीन दिन का मौका है, जो चाहे सो कर लो । चौथे रोज बीस हजार फौज के साथ कूच करना होगा ।

सिप० । बहुत खूब !

इसके बाद धीरे धीरे तमाम दरबारी उठ कर चले गये और अहमदशाह भी महल में चला गया ।

दसवां परिच्छेद ।

कनकलता और मंजुला ।

रात के बारह बज गये होंगे । आहोरदुर्ग बिलकुल निस्तब्ध सा हो रहा है । ऐसा जान पड़ता है मानों इसमें कोई रहता ही नहीं । परन्तु कभी कभी सन्नाटी हवा के झोकों के साथ उन सिपाहियों के ललकारने की आवाजें, जो पूरी मुस्तैदी के साथ दुर्ग की चहारदी वारियों पर चढ़े हुए पहरा दे रहे हैं,—आ आकर उस निस्तब्धता को तोड़ देती है । और दूसरे लोगों को सावधान कर जाती है । दुर्ग के मध्य वाले महल में राजपरिवार के सम्पूर्ण प्राणी अपने अपने शयनागारों में पड़े हुए हैं जिसमें कोई तो सो गया है, कोई भावी युद्ध में विजय पाने के लिये मंसूबे लड़ा रहा है और कोई किसी चिन्ता में निमग्न हो रहा है । मतलब यह कि जितने हैं उनके दिलों में उतनी ही किस्म की लहरें उठ रही हैं ।

देखिये, पाठक देखिये ! यह कौन सी औरत है जो इतनी रात के समय इस लताकुंज से निकली आ रही है !

यह देखिये! यह एक मर्द भी तो निकला चला आता है। हां ठीक, पहिचाना। यह दोनों तो वही आपके परिचित प्रेमी प्रेमिका यानी मधुरसिंह और मंजुला हैं। अच्छा, मधुर को तो जाने दीजिये और आइये मंजुला के पीछे छिपे २ चलें। देखें यह इतनी रात के समय कहां जाती है।

लताकुंज से निकल कर मंजुला सीधे कनकलता के शयनागार में पहुंची। देखा तो वह कुशासन पर लेटी हुई है। पहिले तो उसने जाना कि वह सो गई होगी, परन्तु ज्योंहीं उसने द्वार को धीरे से खोला है कि कनकलता उठ कर बैठ गई और बोली:—"मंजुला! इतनी रात को कहां?"

मंजु०। (घबराहट से) एक बड़ा ही आवश्यकीय समाचार देने को आई हूं।

कन०। (कुछ आश्चर्यित होकर) कैसा आवश्यकीय समाचार?

मंजु०। (विस्मय से) यही कि अहमदशाह फौज लिये चढ़ा आ रहा है।

कन०। छिः इसमें घबराने की बात ही क्या है। और न इसमें कुछ आश्चर्य करने की जरूरत ही है। यह तो सर्वसाधारण जानता है कि वह जरूर चढ़ाई करके मेरे परिवार को समरभूमि में लोटावेगा।

मंजु०। तब तो बड़ी ही मुश्किल होगी।

कन०। मुश्किल कैसी? छिः इसमें मुश्किल होने न होने की बात ही क्या है? क्षत्रियों का काम सत्य, धर्म, मान और मर्यादा के निमित्त समरभूमि में लड़ने के अतरिक्त और है ही क्या? वीरवर क्षत्री लोग इसके लिये तो बनाए ही गये हैं। इसके अतिरिक्त मंजुला! यह भी जान लो कि क्या वह दुष्ट

चैन से रहने पायेगा । नहीं कभी नहीं । यदि बरदायिनी, सिंहवाहिनी दुर्गा माता ने कहीं सुन लिया तो फिर वह दुष्ट भी अपनी करनी को पहुंच जायगा । क्यों मंजुला ! तुम डरती क्यों दिखाई पड़ती हो ?

मंजुला जो चढ़ाई का समाचार सुन कर कुछ कम्पित सी हो रही थी, कनकलता के इन दृढ़तापूर्ण जोशीली बातों को सुन कर उसका हृदय वीरता से भर आया,—उसकी हड्डियों में राजपूती रक्त दौड़ने लगा। और कनकलता ने पूछाः-"यह समाचार तुम्हें कैसे मिला है ?"

मंजुला अभी अभी मधुरसिंह जो इसी लिये भेजे गये थे, आये हैं । रास्ते में उनको मुझसे भेंट हो गई है। उन्हीं से ही मुझको यह बात मालूम हुई है ।

कन० । तुमसे मधुरसिंह यह गुप्त भेद क्यों कहने लगे ?

मंजुला इसका कुछ भी उत्तर न दे सकी । उसके चेहरे पर हवाइयां उड़ने लगीं । बड़ी मुश्किल से उसने अपने को सम्हाला और बात बनाकर कहाः—"मुझे उनके आने का हाल मालूम था । इससे जब मैंने उनको देखा तो पूछा। बहुत आग्रह करने पर उन्होंने यह भेद बतलाया है (बात का रुख बदल कर, जिसमें कनकलता फिर इस बिषय में कुछ प्रश्न न कर सके) आपके अनुष्ठान में कदाचित् चारही दिन बाकी होंगे ।

कन० । हां प्यारी मंजुला ! अब चार ही दिन बाकी हैं। यदि भक्तवत्सला सिंहवाहिनी बरदायिनी कल्यानी माता ने मेरी बिनती स्वीकार कर ली तो अवश्य मैं अपने शत्रु से बदला ले सकूंगी और सफल मनोरथ होऊंगी । परन्तु प्यारी मंजुला ! देखो न पिता जी आदि को मेरे ही लिये

लड़ कर जान देना पड़ेगा (ठंढी साँस खींच कर) न मालूम मेरी किस बुरी साइत से पैदाइश हुई,—न मालूम मैंने किस दुर्घड़ीमें माता के ओद्र में पदार्पण किया। हाय ! बिचारती हूं तो कलेजा फटा जाता है। प्यारी मंजुला! क्या यह अच्छा न होगा कि मैं स्वयं आत्म-हत्या कर लूं और सब झंझटों का निबटेरा कर दूं।

यह सुन कर मंजुला मुस्करा पड़ी और बोली:——"वाह ! तुम्हारी भी अक्ल खूब है। छत्री के घर में जन्म लेकर क्या ऐसी कायरता दिखलाना न्यायसंगत है। नहीं कभी नहीं। मैं तो जरूर मरदानी लिवास में समरभूमि को जाऊंगी और दो एक शत्रुओं को यमपुरी का रास्ता दिखला कर चैन की नीन्द से सोऊंगी।

मंजुला के असाधारण साहस की बात सुन कर कातर हृदया कनकलता को ज्ञान हुआ। उसके शरीर में राजपूती खून जोश मारने लगा। उसने कहा:—हां, प्यारी मंजुला! तुमने बहुत ठीक कहा! मैं भी मरदानी लिवास में समरभूमि को चलूंगी और युद्ध क्षेत्र में ही मैं प्राण विसर्जन करूंगी। मरदानी लिवास में रहने से किसी को हम लोगों का गुमान तक होगा भी नहीं। (हाथ मलकर) कहीं ईश्वर ने सुन लिया,—कहीं सुयोग ने साथ दे दिया तो मैं स्वयं ही दुष्ट पिशाचमूर्ति अहमदशाह को तलवार की घाट उतार दूंगी। नहीं तो, दो चार को तो अवश्य यमपुर पठाऊंगी। अकेले आत्म-हत्या करने से यों मरना तो बहुत अच्छा है।

मंजु०। अच्छा नहीं बल्कि लाख दरजे अच्छा है और सार्थक है।

इसके बाद कनकलता ने धीरे से कुछ कहा। जिसका प्रगट

करना अभी हम ठीक नहीं समझते! इससे पाठकगण क्षमा करें और धर्य्य से आगे के बयान को पढ़े उनको स्वयंही विदित हो जायगा। जिसके उत्तर में मंजुला ने मुस्करा कर कहाः—"इसकी कोई चिन्ता नहीं है। मैं सब कुछ ठीक कर लूंगी।"

यह कह वह बाहर चली गई। आइये पाठक हम लोग भी चलें और कनकलता को अपने व्रत की सिद्धी का यत्न करने दें।

ग्यारहवां परिच्छेद।

चढ़ाई।

यह कहावत बहुत ही ठीक है कि इश्क एक ऐसा नीच भूत है जो आदमी को मनुष्यता की सीढ़ी से नीचे गिरा देता है। उसको ऐसा मतिमन्द बना देता है कि उसमें अपनी बुराई या भलाई के जानने की बुद्धि ही नहीं रहती। उसकी आंखें अन्धी हो जाती हैं,—उसे कुछ दिखलाई नहीं पड़ता उसके कान बहरे हो जाते हैं,—वह अपनी भलाई बुराई को सुन नहीं सकता। वह बराबर देखता है कि नुकसान हो रहा है पर उसे उसकी जरा भी चिन्ता नहीं रहती। लोग उसे समझाते हैं, लाख तरह से उसे उसके सीधे रास्ते पर लाने की कोशिश करते हैं परन्तु वह लोगों के कहने पर कान नहीं देता,—सीधे रास्ते से सदा दूर ही भागता फिरता है। यही दशा अहमदशाह की इस समय हो गई थी। उसके सिर पर भी वही दुष्ट भूत सवार था। यद्यपि अनेक दूर-दर्शी लोगों ने उसे बहुत समझाया, तरह २ की चेष्टाओं से

यह कहकर कि वह राजपूत है, जीते दम तक कभी भी आपकी बात को न मानेगा उसके इरादों से उसे हटाना चाहा परन्तु वह उस भूत को अपने सिर से न हटा सका। भूत ने उसे इतना जकड़ रखा था कि उसे अपनी बदनामी और बेइज्जती तक का ख्याल न था।

राजा पर्वतसिंह पर जो उसने चढ़ाई की सो इसी भूत की करनी थी। यद्यपि वह खूब जानता था कि पर्वतसिंह उसकी मंशा को कभी भी पूरी करनेवाला नहीं है और युद्ध छिड़ जाने में हजारहों वीरों के रक्त पानी की तरह बह जायंगे,—लेकिन क्या चिन्ता? वह भूत के इतना वश में हो गया था कि अपनी बादशाही को अपने हाथों बरबाद कर देने,—हजारहों जवानों के खून की नदी बहा देने को तैयार था किन्तु उस भूत को उतारना नहीं चहता था। कनकलता की ख्याली तस्वीर हर वक्त उसके आंखों के सामने फिरती रहती थी और वह उसके पाने तक की चेष्टा में अपनी जान तक लड़ा देने को तैयार था।

सबेरे का सुहावना समय था। सूर्य्यभगवान के उदय होने में अभी एक घण्टे की देर थी कि अहमदशाह की सेना, जो दो दिन से दुर्ग आहोर को घेरे पड़ी थी, पूर्वी फाटक की तरफ बढ़ती दिखलाई पड़ी।

घमण्डी बादशाह एक भारी हाथी पर सवार था। जिसके ऊपर चांदी का हौद, जिसमें सोने के बेलबूटे बने हुए थे, कसा हुआ था। इस समय अहमदशाह के दिल में नाना प्रकार के ख्याल पैदा हो रहे थे, उसके दिमाग में कनकलता के पाने का ख्याली पुलाव पक रहा था। यद्यपि उस समय अनेक योग्य सेनानायक वहां उपस्थित थे तथापि उ-

सने स्वयं अपने हाथों में फौज की कमान ली और सब के आगे आगे चला ।

अहमदशाह ने सोचा था,—उसके दिल में उम्मेद थी कि पर्वतसिंह हमारी समुन्द्र की तरह सेना को देखकर,—उनके कोलाहल को सुनकर, सामना करने की ताब न ला सकेगा और भयभीत होकर कलकलता को ला अर्पण करेगा परन्तु उसका यह ख्याली पुलाव बिलकुल कच्चा था, राजा पर्वतसिंह एक वीर और प्रतिष्ठित घराने का सपूत था । यद्यपि शाही सेना से सामना करने की क्षमता नहीं रखता था, और खूब जानता था कि विजय पाना असम्भव है परन्तु उसके वीर हृदय में कभी भी भय का संचार नहीं हुआ और न कभी प्रतिष्ठा के विरुद्ध कार्यवाही करने का ध्यान ही पैदा हुआ। वरन् उसने हृदय में दृढ़ संकल्प कर लिया कि इस बेइज्जती की अपेक्षा समरभूमि में मर जाना लाख दरजे अच्छा और आदर्शनीय है ।

शाही सेना बिना रोक टोक आगे को बढ़ती गई । पर आश्चर्य तो यही था कि राजा की तरफ से उसे रोकने की बिलकुल चेष्टा न की गई । किन्तु ज्योंहीं वे फाटक के पास पहुंचे हैं कि ये एक सनसनाता हुआ तीर आया और अहमदशाह की हौद में धंस गया । उसने जिधर से तीर आया था उस तरफ को सिर उठाया कि एक दूसरा तीर उसी तरह सनसनाता हुआ आया और ठीक उसके आगे हौद में गिर पड़ा ।

उसके गिरने से अहमदशाह के आश्चर्य की सीमा न रही । उसने बड़े विस्मय से तीर को उठाया । देखा उसमें

कागज का एक टुकड़ा बन्धा हुआ है। कौतुहलवश उसने उसे खोला, और यह लिखा पाया:—

"ऐ अहमकी बादशाह! होश में आ और सोंच कि जिस तीरंदाज ने यह तीर चलाया है वह इसको तेरे सिर में भी मार सकता था। परन्तु ऐसा नहीं हुआ, क्योंकि राजपूतों का धोके से मारना धर्म्म नहीं है। इससे तुझे सावधान करते हैं कि होश में आ, कनकलता के पाने का ख्याल बिलकुल छोड़ दे और सीधे अपनी समुन्द्र सी सेना के साथ लौट जा नहीं तो फिर तेरी जान की भी खैर न होगी। तेरा—मधुर।"

पत्र को पढ़ते ही अहमदशाह के होश हवाश उड़ गए, तीरन्दाज की सफाई देखकर उसके खून खुश्क हो गये। उसने कुछ भयातुर सा होकर हाथी को सेना के पीछे की तरफ लौटाया, परन्तु पीछे पहुंचतेही उसका वह ख्याल कपट से बदल गया। उसने अपने सेना नायक के हाथ में सेनापति का अधिकार देकर किले पर धावा करने का हुक्म दे दिया।

किले पर धावा किया गया। मुसलमानों ने रह रह कर दुर्ग के फाटक को तोड़ने के लिये भीषण प्रहार किया परन्तु वह न टूटा और न वह भीतर जा सके। आखिरकार धोके बाज म्लेच्छों ने सीढ़ियां लगाईं और ज्योंहीं सबों ने फसील पर चढ़ने के लिये सिर निकाला कि तमाम राजपूत मौत के फिरश्ते की तरह उनपर आ पड़े,—उनके तीरों की बौछार ने फसील से निकले हुए सारे सिरों की धज्जियां उड़ा दीं और देखते देखते हजारों लाशें फसील के नीचे दिखलाई पड़ने लगीं। इसी प्रकार दूसरी बौछाड़ ने भी बहुतों को यमपुरी का रास्ता दिखलाया। मतलब यह कि जितने यवन सिपाह सीढ़ी पर चढ़े थे या यत्न कर रहे थे सब मर कर नीचे आ रहे। इसके

बाद भी मुसलमानों की तरफ से दिल तोड़ धावा हुआ, पर राजपूती तलवारों के आगे उनकी एक भी न बसाई। किले पर से आने वाली गोलियों तथा तीरों की बौछाड़ ने उनका तहस नहस कर दिया। मुसलमानों की हिम्मत टूट गई,—बहुत सिपाही बेमौत मारे गये। आखिकार एक भारी नुकसान के साथ उन्हें किले के धावा को छोड़ कर पीछे को लौट आना पड़ा।

मुसलमानों को इस प्रकार नीचा दिखा कर वीर राजपूत खुशी खुशी अपने थोड़े साथियों को रक्षा के लिये छोड़ कर महल की तरफ लौट गये और रक्षकगण बड़ी सावधानी से टहल टहल कर शत्रुओं की चालों को देखने लगे।

बारहवा परिच्छेद।

सम्राट।

अपनी सेना को निराश लौट आने के कारण अहमदशाह के हृदय पर भी निराशा की झलक दिखलाई पड़ने लगी। पहिले तो उसे सत्मार्ग का रास्ता दिखलाई पड़ा, उसकी तबीयत कुछ ढीली पड़ चली। उसने सोंचा व्यर्थ खून बहाने से लाभ? केवल अपनी एक लालसा के लिये सिर्फ आज ही मैंने हजारों वीरों का खून कर डाला,—हजारहों माताओं की गोद खाली करा दी,—हजारहों नवयोवनाओं को बिधवा बना दिया। परन्तु इसके साथ ही जो उस शैतान भूतने जोर किया तो फिर उसका हृदय काला हो गया, उसकी कांति बदल गई,—उसके हृदय से दया दूर भागी, घमण्ड ने जरा सहारा दे दिया कि उसे आन की तान ही

दिखलाई पड़ने लगा। उसने अपने दिल में कहाः—"ओह! एक छोटा सा राजा,—मेरे इशारे पर चलने वाला, मेरी खाहिशों को जो हर वक्त पलकों से बजा लाता था, उसमें इतनी ताब!!! ओह! उसने आज मेरी बात को लात मार कर हजारहों को काट डाला! ओह। इतना घमण्ड! इतनी तपाकी!!!

यह कहकर वह गुस्से से तिलमिला उठा,—दाह की दाग से उसको दिल जलाने लगी, उसमें अब बरदाश्त की जुरात न रही। उसने घण्टी बजायी। तुरन्त प्रहरी हाथ में बन्दूक लिये, सिर झुकाए सामने खड़ा दिखलाई पड़ने लगा। उसको सामने देखकर अहमदशाह ने कहाः—"तमाम अफसरों को इत्तला दो कि अभी खेमे में हाजिर हों।"

आज्ञा पाकर प्रहरी सिर झुकाये हुए शिविर के बाहर चला गया। थोड़ी देर के बाद प्रधान सेनानायक तथा दूसरे अफसर लोग आ उपस्थित हुए और अहमदशाह का इशारा पाकर सब अपनी अपनी जगह बैठ गये। तदनन्तर अहमदशाह ने अपने मन के भाव को छिपा कर कहाः—"बहादुर अफसरान! इस वक्त तुम लोगों को मैंने इसलिये तकलीफ दी है कि अब क्या करना चाहिये, क्योंकर इस किले को फतह कर अपनी मकसद बर लानी चाहिये।"

अहमदशाह की यह बात सुनकर सब सन्न हो गये, कारण कि, सब अपने दिल में सोंचने लगे कि कहीं राय मुत्तफिक न हुई तो बड़ी मुश्किल आ पड़ेगी। किसी ने कुछ भी उत्तर न दिया।

जवाब न पाकर अहमदशाह ने झुंझला कर कहाः—ओह! नमकहरामो! मैं जान गया, मैं समझ गया तुम सब

राजपूतों के आज ही की मार से चीं बोल गये । लानत है तुम सभो को ! एक मुट्ठी राजपूतों को क्या मेरी समुद्र सी सेना गारत नहीं कर सकैगी—

इसके साथ ही एक तरफ से आवाज आईः—"कभी नहीं ! अगर होगी भी तो तुम्हारे साथ।"

यह सुनते ही अहमदशाह का दिल धक्क से हो गया। उसने फौरन तलवार खींच ली। चारों तरफ देखा,—कोई भी नहीं। तमाम दरबारी सिर झुकाये सामने खड़े हैं। उसने सब से पूछा, कोई आवाज देनेवाले का पता न बता सका प्रहरी बुलाया गया। वह भी अहमदशाह के दिल सेशक को दूर न कर सका, न अवाज देनेवाले का पता बता सका। लाचार 'घेरा' की आज्ञा देकर अहमदशाह ने सब को बिदा किया और स्वयं विशेष प्रहरियों को रक्षा के लिये बैठाया।

तेरहवां परिच्छेद।

देवी दर्शन

घेरा पड़ने का समाचार बिजली की तरह आहोर दुर्ग में चारों तरफ फैल गया। राजा योद्धा सभी लोगों को इस समाचार ने एक और बिपद् में फँसा दिया। कारण कि, किले में बहुत थोड़े दिन के लिये सामान था। इससे राजा प्रजा और सैनिक सब के चित्त पर उदासी छा गई। परन्तु किसी ने हिम्मत न हारी, सब उसी प्रकार अटल, निर्भय और अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहे।

रात के दस बज गये होंगे। किले में चारों तरफ सन्नाटा छा गया है। दुर्ग रक्षकों को छोड़ कर सब वीरगण सुख की

नोन्द सो रहे हैं। कभी कभी रक्षकों के ललकारने की आवाजों से किले की पथरीली दीवार टकरा जाती है और प्रतिध्व-नित होकर लोगों को सावधान कर देती है।

ऐसे ही समय में किले के अन्तःपुर से सुन्दरियों का एक छोटा दल निकला। जिसमें चार सहेलियां थीं और बीच में राजकुमारी कनकलता। सखियां राजकुमारी को चारों तरफ से घेरे हुए थीं और सबों के हाथ में पूजा के सामान जैसे फूल फल धूप दीप इत्यादि थे।

हां पाठक! ठीक ठीक याद आया, आज ही राजकुमारी के अनुष्ठान का अन्तिम दिन है। इससे वह सहेलियों के साथ सिंहवाहिनी वरदायिनी भक्तवत्सला दुर्गा माता की पूजन को जा रही है। आइये, आइये, हम आप भी चलें और राजकुमारी के साथ ही सर्वशक्तिशालिनी माता का द-र्शन कर कृतार्थ होवें।

राजकुमारी सहेलियों के साथ चल कर एक छोटे पर संगमरमर के बने हुए मन्दिर में पहुंची। इस मन्दिर के चारों तरफ थोड़ी दूर तक उत्तम उत्तम सुगन्धित फूलों के वृक्ष लगे हुए थे। जिनके कलियों के चटखने और फूलों के महकने से इस समय वह स्थान सुगन्धि की खानि बना हुआ है और उसी के बीच में जगत् माता खड्ग लिये आमोद प्रमोद कर रही थीं।

मन्दिर के समीप पहुंच राजकुमारी ने आगे बढ़ सिर झुकाया। फिर बार बार सिर नवा कर, मन से सारे विचारों को भुला कर, और एकाग्रचित्त होकर वह सर्वशक्तिशालिनी भक्तवत्सला सिंहवाहिनी की पूजा करने लगी। धूप, दीप, अक्षत फल फूल इत्यादिक पूजा के सामानों से माता को

सजा कर दुःखिनी राजकुमारी ने विशुद्ध हृदय और एकाग्र-चित्त होकर माता के चरणों पर सिर नवा दिया और ध्यान में वह ऐसी लवलीन हो गई कि उसे संज्ञाहीन कहना कुछ बेजा नहीं होगा।

लगभग आध घण्टे तक सुकुमार बालिका इसी प्रकार बेसुध होकर पड़ी रही। इसके बाद एकाएक ठण्ढा झोंका आया चारों सहेलियां तन्द्रावस्था में हो गईं। तब सिंह-वाहिनी कृपालु माता प्रगट हुईं। उधर राजकुमारी ने भी सिर उठाया,—दर्शन से नेत्र को तृप्ति कर उसने पुनः माता के चरणों में सिर झुका दिया। माता ने पुनः अपने हाथों से उसके सिर को उठाया और अमृतमय मधुर मुस्कान ले कर कहाः—"कनकलता! चिन्ता नहीं। तू अवश्य अपनी प्रतिज्ञा को पूरी करेगी।" इतना कहने बाद माता जगतजननी अन्तर्धान हो गईं। और फिर जब कनकलता ने नैन पसार कर देखा तो सिवाय मन्दिर और प्रतिमा के कुछ भी दिखलाई न पड़ा।

इसके बाद राजकुमारी सचेत हुई। उसने सिर उठा कर देखा,—सहेलियों को हाथ जोड़े खड़े पाया और फिर उसने खुशी खुशी राजभवन का मार्ग लिया।

चौदहवां परिच्छेद।

अन्तिम विचार।

आज अहमदशाह को किले का घेरा डाले पूरे तीन महीने हो गये हैं। इस बीच में उसकी तरफ से खूब कड़ा इन्तजाम किया गया था कि रसद क्या आदमी भी दुर्ग में बमु-

शिकल आ जा सकता था। यद्यपि इस बीच में मुसलमानों ने कई बार भयानक आक्रमण किये। किन्तु उनकी कुछ न बसाई बरन् उनको भारी नुकसान के साथ लौट आना पड़ा।

हार पर हार खाने से अहमदशाह चिढ़ गया और उसने हुक्म दिया कि फौज सिर्फ घेरा डाले पड़ी रहो। निदान अहमदशाह की यह चाल किलेवालों के लिये बड़ी बिकट हुई। धीरे धीरे उनकी भोजन सामग्री बिलकुल खतम हो गई। घेरा ऐसा था कि बाहर से कुछ जा नहीं सकता था,—अतएव खाने की तकलीफ ने राजपूतों को घबरा दिया और धीरे धीरे वे अधीर हो उठे।

यद्यपि अहमदशाह इस समय भी सुलह करने को तैयार था किन्तु उस सन्धि-पत्र की शर्त ऐसी कठोर और खून को उबाल देनेवाली थी कि, जिसका मञ्जूर करना तो दूर रहा पर्वतसिंह उस शर्त को सुनने की भी ताब नहीं रखते थे। वह मर जाने, मिट जाने और सदा के लिये समरभूमि में सो जाने को राजी थे किन्तु जिल्लत की जिन्दगी को हरगिज गवारा न कर सकते थे। वीर राजपूत एक नीच प्रकृत मुसलमान बादशाह से कुछ कहना भी नहीं चाहते थे। यद्यपि उनको फांके पर फांके हो रहे थे,—उनके घोड़े महीनों से हरियालियों या चरागाहों की शकल देखने को तरस रहे थे तथापि उनके वीर हृदय, क्षमता पूर्ण दिलों में अब भी पूर्व ही की भांति शांति विराजमान थी।

आखिरकार पर्वतसिंह से वीर राजपूतों का दुःख न देखा गया और उन्होंने सब राजपूतों को बुला कर कहना प्रारम्भ किया:—"ऐ मेरे बहादुरों! ऐ मेरे दुःख की घड़ी में साथ देनेवाले वीरों! मैं तुम्हारा बड़ा ही कृतज्ञ हूं, तुमने मेरी

इज्जत बचाने में, दुष्ट अहमदशाह को अपने पापी मंसूबों से रोकने में मेरा हाथ बंटाया है । इसके निमित्त केवल मैं ही कृतज्ञ नहीं मेरा सारा परिवार इसके लिये सदा कृतज्ञ रहेगा । सम्पूर्ण राजपूतगण तुम्हारी इस वीरता, स्वामी प्रियता तथा विश्वस्ता के एहसान के बोझ से सदा दबे रहेंगे चाहे यह दुनियां न रहे, चाहे संसार को सुखमय करनेवाले सूर्यभगवान इस संसार से चले जांय, चाहे यह चद्रदेव इस संसार से अदृष्ट हो जांय,—परन्तु मेरा यह दिल तुम लोगों के एहसान को कभी नहीं भुला सकता । खैर, इन बातों के बयान करने की कुछ भी जरूरत नहीं है । जो कुछ मेरे मुंह से निकल गया है यह एक दिली जोश था । मैंने तुम लोगों को केवल इसलिये बुलाया है कि अब क्या करना चाहिये क्योंकि शत्रु आज तीन महीने से घेरा डाले पड़ा है, रसद बिलकुल खतम हो गई है, बल्कि दो तीन दिनों से फांका भी हो रहा है । इसके अतिरिक्त बाहर से भी किसी प्रकार की आशा नहीं है क्योंकि शत्रु का घेरा बड़ा जबंदस्त है ।

यहां तक कहकर पर्वतसिंह चुप हो गये और तब सेनाध्यक्ष मानसिंह ने उपस्थित राजपूतों को लक्ष करके कहा:—

"महाराजाधिराज ने जो कुछ कहा है बिलकुल सत्य और ठीक है । आप लोगों को मालूम होना चाहिये कि तीन चार दिन से बराबर राजपरिवार के लोग एक वक्त भोजन कर रहे हैं । रसद अब बिलकुल नहीं है और न उसके लाने का कोई इन्तजाम हो सकता है । किन्तु मेरे वीरों ! राजपूत की सन्तान के लिये यह बड़े शर्म की बात है कि वह बिना अपना करतब दिखाये ही इस घेरे की बुरी मौत मरे । इस संसार में जितने लोग आये हैं सब को एक दिन

मरना है,—यह संसार असार है एक दिन सब को मौत का शिकार होना पड़ेगा। परन्तु मेरे बहादुरों! क्या यह नहीं हो सकता कि वीरों की मौत मरें और इस संसार में अपनी अटल कीर्ति छोड़ जांय। यह मनुष्य का शरीर वास्तव में पानी का एक बुल्ला है, प्रत्येक समय वह मिटने के लिये तैयार रहता है। यह संसार क्या है? यह केवल एक कर्म-क्षेत्र है। जो आये और योहीं मर गये उनको कौन जानता है? कोई भी नहीं। पर जो लोग कुछ करके मरे हैं, अपनी कीर्ति स्थापित कर गये हैं, देखो उन्हीं की निशानी बन कर असमान पर ऐ तारे और चांद चमक रहे हैं। यह कौन लोग थे? वीरगण! ये वही थे जिन्होंने स्वदेश-सेवा के लिये, मातृभूमि के उद्धार के लिये, अपने भाइयों की सहायता के लिये, अपने जानों को अपनी मातृभूमि के ऊपर न्योछावर किये हैं,—ये लोग वही हैं जो घर में चारपाई पर सोकर नहीं मरे हैं, किन्तु इन लोगों ने समरभूमि की हरी हरी दूबों को अपना बिस्तरा बनाया है। जिसका परिणाम यह हुआ कि आज तक युद्ध के समय उनके नाम सहायकों की तरह लिये जाते हैं, उनकी कार्यवाही गीत की तरह गाई जाती है। सच पूछो तो ऐसे लोगों ने अपने को मिटाया नहीं बल्कि सदा के लिये अपने को अमर बना दिया, जिससे इस दुनियां के साथ ही साथ उनका नाम भी बना रहेगा। अतः ऐ वर राजपूतों! यदि आप लोग भी ऐसी कीर्ति स्थापन करना चाहते और योहीं वीरगति को प्राप्त करना चाहते हों तो समय हाथ में आ गया है। इसे खोना न............।

मानसिंह अभी इतना ही कहने पाये थे कि चारों त-

रफ से बड़ा हल्ला हुआ और सुनाई पड़ाः--"अवश्य! अवश्य!"

मानसिंह ने कहाः—"परन्तु यह कीर्ति जभी स्थापित हो सकती है जब कि हम मातृभूमि पर अपने जीवों को निसार न कर दें।"

उपस्थित वीरों ने कहाः—"हां हां हम लोग अपने अमूल्य प्राणों को प्रसन्नता से मातृभूमि पर न्योछावर करने और वीरगति को प्राप्त होने को तैयार हैं।"

पर्व०। साहसी वीरों! मुझे भी तुम लोगों से ऐसीही आशा थी। निस्सन्देह तुम लोगों के नाम भी, तुम्हारे सन्तान् तुम्हारे पुरुषों ही की तरह याद करेंगे (डबड़बाई हुई आंख से) मेरे वीरों! मेरे दुःख के साथियों! अब वीर की मौत मरने के लिये तुम्हें तैयार हो जाना चाहिये। तुम लोग इसी अभिप्राय से इस दुर्ग में जमा हुए हो, और तुम लोगों का प्रथम ही से शत्रु को यमपुरी पठाना प्रधान लक्ष था। किन्तु अब किले में बन्द रहने से काम नहीं चलने वाला है क्योंकि रसद बिलकुल नहीं है। न बाहर निकलने ही का कोई उपाय है फिर फाकों से बचने के लिये कौन सा उपाय किया जाय?

इसके साथ ही आवाज आईः—"मारना और मर मिटना!!!"

इसके बाद भी उपस्थित वीरों ने एक स्वर से कहाः— "हम लोग यहां गीदड़ों की मौत यानी चरपाई पर पड़े पड़े मरने नहीं आये हैं। जब हमको एक दिन मरना ही है तब क्यों न हम इज्जत की मौत मरें और वीरगति को प्राप्त हों।

पर्व० निसन्देह! अब इसके सिवाय कोई दूसरा उपाय

नहीं है! अब हमको भी ऐसे समय में वही उपाय का अवलम्बन करना चाहिये जिसका कि हमारे वीर पुरुषों ने किया था। वह उपाय क्या है? उसे अभी अभी तुम लोगों ने कहा है यानी "मारना! और मर मिटना!!!" वास्तव में अब इसके सिवाय कोई दूसरा चारा नहीं है। यदि ऐसा न करेंगे तो बुरी मौत फाकों के मारे मर जायंगे और कुछ करते धरते न बन पड़ेगा।

उपस्थित लोग। नहीं नहीं ऐसा क्यों होने लगा। हम क्या कायर हैं।

पर्व०। (प्रसन्नता से) जान पड़ता है तुम लोग मेरी बात को समझ गये।

उपस्थित लोग। खूब! क्या राजपूत के लिये अपनी जान मातृभूमि तथा मर्यादा पर न्योछावर कर देना कोई बड़ी बात है। नहीं, कभी नहीं। राजपूतों के नजदीक यह बाएं हाथ का एक खेल है। हम लोगों की जानें प्रत्येक समय धर्म्म और मर्यादा के लिये निसार हो जाने के निमित्त आपके चरणों में तैयार हैं।

इसके उपरान्त धीरे धीरे कुछ बातें होने लगीं। इस समय प्रत्येक राजपूत के हृदय में एक असाधारण जोश भरा हुआ था। यद्यपि उनको पूरा पूरा विश्वास था कि विजय प्राप्त नहीं होगी। किन्तु इतना होने पर भी उनके हृदय में धर्म्म, मर्यादा और वीरता ने इतनी आग फूकं दी थी कि जिससे वे अपने अमूल्य प्राण समरभूमि में लुटा देने को तैयार हो गये थे। इससे अंतिम युद्ध में केवल उनका लक्ष था वीरता के साथ मारना व मर जाना और सदा के लिये संसार रूपी

तख्ते पर अपने सुनौले खून से अपनी कीर्ति अङ्कित कर जाना।

मारने और मर मिटने के पहिले उनके दिलों में इस सवाल का उठना लाजमी था कि पहिले दुर्ग में रक्षित स्त्रियों, बच्चों और किले के जरोजवाहिरातों के भी भाग्य का फैसला कर दिया जाय। इसके साथ ही पाठकों को यह भी जान लेना चाहिये कि वास्तव में मारने और मर मिटने का असली मतलब यही था कि जब राजपूतों को अपने भारी शत्रु के सामने सफलता की झलक दिखलाई न पड़ती थी, तो वे पहिले अपने तमाम जरो जवाहिरातों को, रत्नजड़ित एक से एक अमूल्य आभूषणों को अपने ही हाथों से जला कर खाक स्याह कर देते थे। स्त्रियां चिता पर बैठ खुशी खुशी अपने शरीर का नाश करती थीं और उनका विशुद्ध सतीत्व पूर्ण प्राण पखेरू धुवां के साथ उड़ कर स्वर्गधाम को चला जाता था। बाद को वीरगण भी तलवार लेकर समरभूमि में उतर जाते थे और वहीं लड़ते लड़ते अपना खातमा कर देते थे।

युद्ध में जीत कर, विजय की खुशी में जब शत्रु हँसता कूदता राजपूतों के घरों में प्रवेश करता तो वहां राख उड़ उड़ कर उसके मुंह को काला करती। राख के सिवा उसे वहां कुछ भी न दिखलाई पड़ता और उसकी सारी आशायें, लालसायें और उमङ्गे उस राख से बदल जातीं।

प्रिय पाठकगण! कहिये, आप लोगों ने समझा? इसी का नाम "मारना और मर मिटना है।" आज आहोर दुर्ग को वीर राजपूत भी मारने और मर मिटने के लिये दृढ़ संकल्प कर चुके हैं। यद्यपि मारने और मर मिटने की रसम एक

हृदय विदारक प्रथा थी परन्तु इसका पूरा करना राजपूतों ही के हिस्से में आ पड़ा था। मतलब यह कि यह उनके बायें हाथ का खेल था। अपने दिल के टुकड़ों को, अपने रक्त के पसीने से एकत्र की हुई सम्पत्ति को शत्रुओं को देना और उनकी कृपा के ऊपर उसे छोड़ना वे कभी भी गवारा नहीं कर सकते थे। वे अपने हाथों से अपनी औरतों को कत्ल करना या अग्निदेव को समर्पण करना अपना मुख्य कर्तव्य समझते थे। हाय! वह दृश्य कैसा हृदय बिदारक होता होगा, जब कि एक वीर राजपूत औरतों को जलता देखता होगा!!! या एक कृपालु बाप अपनी प्यारी पुत्री का गला घोंटने को प्रस्तुत होता होगा। पर पाठकों को जानना चाहिये कि राजपूतों को ऐसा करने का बहुत कम मौका मिलता था। क्योंकि स्त्रियां स्वयं चिता के भीतर प्रवेश कर अपने पवित्र शरीर को जला कर राख कर दिया करती थीं, पुरुषों को कभी तलवार पर धब्बा लगाने की कौन कहे, कहने तक की नौबत न आती थी।

अन्त में सब की सम्मत्ति से यह निश्चय हुआ कि औरतें अपने पवित्र शरीर के साथ चिता में प्रवेश करें और पुरुष फाटक खोल, निकल कर शत्रुओं पर टूट पड़ें। और मर मिटें। मातृभूमि तथा मर्यादा के बचाने में अपने शरीर को न्योछावर कर दें।

निदान यह समाचार दम की दम में अन्तःपुर में पहुंच गया। राजपूतनियों ने भी खुशी २ इस समाचार को सुनकर प्रसन्नता प्रकट की और राजपूतों को विश्वास दिला दिया कि वह प्रत्येक समय चिता में प्रवेश करने को प्रस्तुत हैं। हां बाज बाज स्त्रियों ने अपने स्वामियों से यह आज्ञा चाही

कि उनको भी समरभूमि में जाकर पुरुषों के हाथ बँटाने का समय दिया जाय। यह प्रार्थना कोई विचित्र न थी। इसके पहिले भी कई बार वीराङ्गनाओं ने मैदानजङ्ग में अपना करतब दिखलाया था,—सशस्त्र होकर राजपूतों की सहायता की थी। इससे उनकी यह प्रार्थना तुरन्त स्वीकार की गई और तत्क्षण बहुत सी वीराङ्गनायें समर के लिये सज धज कर तैयार हो गईं।

सन्ध्या समय दुर्ग के मैदान में एक भारी चिता लगाई गई। पहिले तो सारे जेवरात और बहुमूल्य चीजें अग्निदेव को समर्पित की गईं। पीछे, राजपूतनियों के जलने का वीभत्स और हृदय बिदारक दृश्य का परदा उठाया गया।

पन्द्रहवां परिच्छेद।

पिता पुत्र।

अंधेरी रात का सन्नाटा है। राजपूतनियों के जलने, आग के धधकने, लकड़ियों के चटखने, दहकती हुई आग की भयानक लपटों के उठने इत्यादि के दृश्य राजमहल को श्मशान से भी भयानक बनाये हुए हैं। अतएव इन तमाम दृश्यों के देखने की ताबन रखकर राजकुमारी कनकलता अपने महल में जा बैठी है और हाथ के सहारे अपने कोमल कपोल को टेके हुए, एक एक घटना को विचार रही है। सोंचते सोंचते वह उस दिन यामी देवी दर्शन की घटना पर बिचार करने लगी। उसने अपने दिल में कहा, उस दिन खड्ग धारिणी, शत्रुविनाशिनी, सिंहवाहिनी भक्तवत्सला माता ने साक्षात दर्शन दे कहा था कि तेरी मनोकामना पूर्ण

होगी परन्तु मैं अभी तक यह न निश्चय कर सकी कि मेरी मनोकामना क्या है? और मैं क्या करना चाहती हूं? (कुछ ठहरकर उसने पुनः अपने दिलमें कहा) इस लड़ाई का जो परिणाम होने वाला है। उस नाटक का खेल तो प्रारम्भ हो गया। ठीक ही है इसके सिवाय और होता ही क्या? कहां असंख्य शिक्षित म्लेच्छी सेना और कहां थोड़े से राजपूत!!! (उसके आंखों से आंसु टपक पड़े) मैंने भाई से कहा था कि मुझे मार डालो, मुझे खतम कर दो जिससे वह दुष्ट आप ही से आप शान्त हो जायगा, चढ़ाई करने का नाम न लेगा। परन्तु उन्होंने मेरी बात न मानी। मेरी बातों को हवा में उड़ा दी। (इसके बाद वह सिसक सिसक कर रोने लगी)।

उसी समय किसी ने पीछे से आ और गर्ज कर कहा:—"ओह! कमहिम्मत! तू यहां छिपी हुई रो रही है। बुजदिल असाहसी लड़की!!!"

गर्ज और बिकट आवाज सुनकर कनकलता चौंक पड़ी। उसने जो फिर कर देखा तो अपने पिता को सामने खड़ा पाया। पर्वतसिंह को देखते ही उसका कोमल हृदय और भी उमड़ आया। वह दौड़ कर अपने पिता के चरणों से लिपट गई और सिसकती हुई बोली:—"पिता! मैं कमहिम्मत नहीं हूं।"

पर्वतसिंह ने उसे लात से झटकार दिया। वह दूर जाकर गिर पड़ी। और उन्हों ने गरज कर कहा:—"कुलांगार! तू कमहिम्मत नहीं तो क्या है? दुष्टा कुलकलङ्किनी! यदि तू बुजदिल न होती तो अपनी बहिनों की तरह जल भुन कर खाक स्याह न हो गई होती।"

यह सुन कर वह दौड़ी हुई अपने पिता के पैरों से पुनः लिपट गई। बोली:—"पिता! पिता! मैं—"

पर्व०। (बात काट कर) दूर हो! मेरी नजरों से दूर हो जा और जल कर मर जा।

कन०। (हाथ जोड़ कर) मैं मरने को तैयार हूं। मुझे इसमें कोई भी उज्र नहीं है किन्तु—

पर्व०। (ठोंकर मार कर) किन्तु किन्तु मैं सुनना नहीं चाहता। मैं जान गया, मैं खूब समझ गया। तू बुजदिल है कमहिम्मत है। यदि तू जीती रहेगी तो अवश्य मेरी प्रतिष्ठा पर कलङ्क का काला दाग—

कन०। (बिलखते हुए, बात काट कर) नहीं, पिता नहीं! मैं कुलकलङ्किनी नहीं हूं। पर- -

पर्व०। (गरज और काट कर) फिर वही पर सर की बात लाई। मैं अब तुझे नहीं छोडूंगा। तू अब कभी जीती नहीं बचेगी। सम्हल जा! मैं तुझे अभी अभी अपने हाथों से यमपुरी पठाऊंगा।

कन०। (उठ कर और गले लिपट कर) मारो, पिता मारो! मुझे कत्ल करो, यमपुरी पठाओ। मुझे इसमें कुछ भी उज्र नहीं है। पर एक बिनती—

पर्व०। (दूर ढकेल कर) नहीं, नहीं। तेरी मैं अब एक भी नहीं सुनूंगा। सावधान हो जा और सिर झुका।

कन०। (पैरों पर गिर कर) सुन लो पिता, मेरी अन्तिम प्रार्थना सुन लो। आपने मुझे किस लाड़ चाव से पाला है। किस तरह इतने दिनों तक प्यार से जिलाया है। अपने उस लड़की की प्रार्थना सुन लो,—उसकी एक बात सुन लो। फिर जो चाहे सो करो। पिता—

कनकलता की करुणामय रुलाहट से चारों तरफ की दीवारें भी रोती हुई जान पड़ने लगीं। साथ ही पर्वतसिंह की आंखों में भी आंसुओं की झलक दिखलाई पड़ी। जान पड़ा उनके हृदय में भी प्रेम का समुद्र उमड़ आया। और उसकी चोट से उनका पाखान हृदय खण्ड खण्ड होकर आंसुओं में परिणित हो गया। परन्तु उन्होंने उस भाव को छिपा कर कहाः—"कनकलता, यह समय ही ऐसा है! मैं इस समय तेरी पिछली बातों को नहीं सुन सकता और न तेरी प्रार्थना पर ध्यान दे सकता हूं। बस! अब सावधान हो जा और सिर झुका।"

कनकलता ने हाथ जोड़ कर कहाः—"पितः यदि आप मेरी प्रार्थना नहीं सुनना चाहते हैं तो लीजिये।"

यह कहकर वह वहीं बैठ गई और उसने खूनी खंजर का निशाना बनने के लिये अपने सिर को झुका दिया।

कनकलता का सिर झुका हुआ देखकर, पर्वतसिंह ने भी चपला सी चमचमाती, बिजली सी लपलपाती तलवार म्यान से निकाल कर हवा में तानी और चाहते थे कि एक ही वार में उसका सिर तन से जुदा कर दें कि किसी ने पीछे से निकल कर उस खून की प्यासी नागिन को पकड़ लिया। पर्वतसिंह ने पीछे घुमकर देखा। साथ ही आवाज आईः—"पिता!" इधर इनके मुंह से निकला "पुत्र!"

"पिता! यह क्या करते हो?"

"इसका खून!!!"

"क्यों?"

"मरने से डरती और जान बचाना चाहती है।"

यह सुनते ही कनकलता दौड़ कर आई और अपने भाई

के गले से लिपट कर बोली:—"नहीं भय्ये, नहीं ! मैं मरने से नहीं डरती हूं पर—

"पिता जी ! सुनिये, यह क्या कहती है।"

पर्व०। वीर सतेन्द्र ! देखो, यह पर में क्या कहना चाहती है।

सते०। कहो कहो। प्यारी बहिन, कहो ! क्या कहना चाहती हो, कहो ?

कन०। अहमदशाह का खून करके मरना।

पर्वतसिंह और सतेन्द्रसिंह दांतों अंगुली दबा कर बोल उठे "ऐसा !"

कन०। हां, ऐसा ही।

पर्व०। नहीं कभी नहीं ! वीरवर सतेन्द्र ! यह केवल अपनी जान बचाने के लिये ऐसा कहती है। भला, यह कैसे अपने कोमल हाथों से, अपने उन भुजाओं से, जिन्होंने कभी कोई काम नहीं किया है, कभी कोई कौशल नहीं दिखलाया है, इतना बड़ा काम कर सकती है।

कन०। (सतेन्द्रसिंह से अलग होकर) निस्सन्देह ! पिता आप बिलकुल सत्य कहते हैं। मुझमें इतनी ताकतन हीं है,—निस्सन्देह ! मुझमें खङ्ग धारण करने की भी सामर्थ्य नहीं है। परन्तु यह काम मैं आपकी कुल पूजित अधिष्ठात्री देवी की सहायता से करूंगी। क्योंकि माता ने मुझे ऐसा ही वरदान दिया है। ऐसा तो कभी हो नहीं सकता, परन्तु कदाचित् हो गया और भाग्य ने साथ न दिया तो (अपने छाती में छिपे हुए खंजर को निकाल कर) यह आपकी पुत्री इसी से आत्महत्या करेगी। निश्चय जानिये ! पिता निश्चय जानिये ! यह आपके उन्हीं वीरता के खूनों से बनी और

उन्हीं को पी पीकर पली है। इससे कभी भी ऐसा काम नहीं हो सकता जिससे कुल के माथे पर कलङ्क का टिका लगे।

पर्व०। फिर मुझे विश्वास कैसे हो?

सते०। मुझे तो विश्वास हो गया और मेरा दिल पुकार पुकार कर कह रहा है कि यह अवश्य दुष्ट अहमदशाह से बदला लेगी और अपने कोमल हाथों को उसके खून से रंगेगी। परन्तु पिता! यदि आपको विश्वास न हो तो सिर झुकाइये, शुद्ध चित्त से माता का ध्यान कर अनुमति चाहिये।

यह सुनकर वीरवर पर्वतसिंह ने एकाग्र चित्त हो कुलपूजित अधिष्ठात्री देवी का ध्यान किया। साथ ही माता ने दर्शन दे कहाः—"निस्सन्देह! उसकी मनोकामना पूर्ण होगी।"

यह सुन और वरदायिनी देवी के दर्शन से तृप्त होकर पर्वतसिंह ने अपना सिर उठाया और कहाः—"अच्छा बेटी! मैं तुझे माता की आज्ञा पर छोड़ता हूं। परन्तु, पहिले तो कभी ऐसा हो नहीं सकता। शायद चूक जाओ तो अवश्य आत्म-हत्या कर मेरी इज्जत बचा लेना। बेटी! अवश्य मेरी लाज रख लेना।

कन०। (डबडबाई हुई आंख से) निसन्देह! पिता मैं कभी भी आपकी आज्ञा का उलंघन न करूंगी।

इसके उपरान्त पर्वतसिंह ने प्यार से कनकलता को छाती से लगाया और कान में कुछ कहा। फिर बोले "जा बेटी! अपने प्यारे भाई से मिल ले।"

कनकलता दौड़ कर अपने प्यारे भाई से लिपट गई। और दोनों ओर से हिचकियों की आवाज आने लगीं। बड़ी

कठिनाइयों के उपरान्त सतेन्द्रसिंह ने अपने को सम्हाला और कुछ कहना चाहते थे कि इतने ही में मंजुला मरदानी लिबास पहिने आ गई और बोली:—"राजकुमारी! अब विलम्ब का समय नहीं है, चलिये भेष बदलिये और युद्ध के शस्त्रों से सुसज्जित हुजिये।"

यह सुनकर कनकलता ने भाई से आज्ञा चाही और उन्होंने भी कहा:—"जाओ बहिन! तुम्हें माता के चरणों में छोड़ा।

इसके बाद कनकलता मंजुला के साथ वहां से चली गई और पिता भी पुत्र अपनी सेना में आ मिले।

सोलहवां परिच्छेद।

युद्धस्थल।

रात भर दुर्ग आहोर में विचित्र दशा रही। उधर तो राजपूतनियां छोटे छोटे लड़कों और लड़कियों के साथ चिता की धधकती हुई आग में जल जल कर राख हो रही थीं, इधर वीरवर योद्धागण सामरिक सामानों से लैस होने में लगे हुए थे। चारों तरफ सन्नाटा छाया हुआ था। वीरगण सवेरा होने का बड़ी घबराहट से इन्तजार देख रहे थे कि कब सवेरा हो और कब इस प्राण को मातृभूमि और जाति पर न्योछावर कर संसार की दृष्टि में आदर्श बनें।

आखिरकार इन्तजारी के ढाप वाला परदा उठा,—लोगों की घबराहट का अन्त हुआ। सूर्यभगवान रक्त की नदी बहाने की सूचना जगत को देने के निमित्त अपनी लाल किरणों को आस्मान पर फैलाए हुए हिमांचल के पूर्वी

कोन से प्रगट हुए। उनकी वही सुनहरी किरणें जो जगत को सुख से रंजित करती हैं दुर्ग आहोर के विशाल दिवारों पर उदासी और आश्चर्य का चित्र खींचने लगीं ।

सूर्यभगवान के दर्शन कर सूर्यवंशीय उजागरों ने खून की नदी बहाने के लिये अपने खूनी कपड़ों पर फौजी लिबास पहिने और हथियार लगाये । इसके बाद निम्नलिखित दृश्य दिखलाई पड़ा । सब के मुंह मेंतुलसीदल था । विशाल ललाट पर चन्दन के त्रिपुण्ड लगे थे और माता के चरणों में सब शीश झुके हुए थे ।

इस प्रकार सज धज कर सब के सब दुर्ग के विशाल फाटक के समीप जमा हुए और बड़े जोश के साथ एक दूसरे से मिलने लगा । उनका यह मिलना अन्तिम मिलना था और उनके मिलने के ढङ्ग से साफ साफ मालूम होता था कि-इनमें से एक भी अब दूसरे से इस जन्म में नहीं मिल सकेगा !!!

इस अन्तिम मिलाप के हो जाने के बाद पर्वतसिंह उछल कर अपने घोड़े पर सवार हो गये और अपने चारों तरफ के जमा हुए बहादुर राजपूतों को पुकार कर बोलेः—"वीरों ! जननी जन्मभूमि और अपनी मर्यादा की रक्षा के निमित्त तलवार पकड़ते जाओ और फाटक खोल दो ।"

आज्ञा पाते ही वीर राजपूतों ने फाटक खोल दिये और फिर वे मरने के लिये समरभूमि की तरफ रवाना हुए । द्वापरयुग की भांति इस समय कुरुक्षेत्र के समान समरभूमि कोई निश्चित स्थान नहीं था । वे दुर्ग से निकलते ही उस तरफ को चल पड़े, जिधर मुद्दतों से शाही सेना घेरा डाले पड़ी थी ।

यह छोटी सी सेना राजा पर्वतसिंह की अध्यक्षता में थी। जिसके एक तरफ तो राजा पर्वतसिंह का वीर लड़का और दूसरी तरफ सेनानायक मानसिंह थे, जो अपनी बहादुरी और सच्चाई में उस समय अपना जोड़ नहीं रखते थे। इस समय राजपूतों के दिली जोश का ठिकाना न था। ऐसा जान पड़ता था कि ये पहुंचते ही शत्रु को तलवार की घाट उतार देंगे और देखते देखते उनको यमपुर पठा देवेंगे। उनके चेहरों पर बिलकुल शान्ति बिराजमान थी और उनके दिलों में इस बात का जरा भी ख्याल न था कि शत्रु की सेना अपार और हम लोग थोड़े हैं। शत्रुओं की संख्या ज्यादा होने पर भी उनके हृदय में भय का नाम तक न था। वे लोग इसी बात को लक्ष बनाये हुए थे कि दुष्ट अहमदशाह को, जो घेरा डाले हुए कई महीनों से पड़ा है युद्ध की आग बिछा कर उसमें उसको जला कर खाक बना देंगे या उसकी आग बरसाने वाली अपार सेना की आग में स्वयं आहुति बन कर संसार में यह साबित कर देंगे कि राजपूतों को अपनी इज्जत और जातीयता के स्नेह का कहां तक पास होता है।

जिस मौके पर सेना और सेना नायकों का एकही लक्ष रहता है और जहां दोनों के वीर हृदय में "मारने और मर मिटने" का ख्याल भरा होता है। वहां सेना और सेनाध्यक्षों में कुछ भी अन्तर नहीं रहता है। इस समय इस जगह भी वैसा ही हुआ। अफसर और मातहत का कोई भी लिहाज नहीं रखा गया। पर्वतसिंह, सतेन्द्रसिंह और मानसिंह भी सिपाहियों की कतार में शामिल हो गये थे। इस समय सब के हाथों में खून से पिपासी नंगी तलवारें खिंची हुई थीं। सब बराबर पैदल चल रहे थे। राजा और सेना के वीरों में

फर्क था तो इतना ही कि पर्वतसिंह और सतेन्द्रसिंह के सिरों पर शाही मुकुट शोभायमान था और मानसिंह के हाथ में राजपूती निशान था, जिसपर सूर्यवंशियों के आदि पुरुष सूर्यभगवान का सुनौला चित्र चमक रहा था। इतना भेद भी इन तीनों आदमियों की जान को जोखों में डालने वाला था क्योंकि दुश्मन इसको देखते ही उन्हें अपनी वार का लक्ष बना सकता था।

राजपूतों ने तो दुर्ग से निकलते ही तलवारें खींच ली थीं। फिर मार्ग में म्यानों को तोड़ कर फेंक दिया और शत्रुओं के समीप पहुंचते ही सब के सब झुरमुट बांध कर शत्रुओं पर टूट पड़े। थोड़े से राजपूतों को देखकर मुसलमान भी खुशी खुशी तलवारें खींच कर मुकाबले पर डट गये और दोनों तरफ से तलवारों की आग बरसने लगी,--मौत का बाजार गर्म हो गया और मृत्यु एक के बाद दूसरे को अपना निशाना बनाने लगी।

मुसलमानों ने अपनी रक्षा और मार के सुबीते के लिये पहिले ही से मिट्टी की जो दीवारें बना ली थीं। वह राजपूतों के पहिले ही आक्रमण में तोड़ दी गईं। फिर वीरवर राजपूतों ने म्लेच्छी सेना के बीच घुस कर शत्रुओं को तलवार की घाट उतारते हुए सीधे शाही खेमा का रुख किया।

राजपूतों के इस असीम वीरता और अनोखे आक्रमण से शाही सेना में खलबली मच गई। अहमदशाह ने तुरन्त हथियार पहिना, शस्त्रों से अपने को सजाया और अपने घबराये हुए सिपाहों को समेट कर वह मुकाबला में आ डटा। लड़ाई हाथों हाथ होने लगी। पर राजपूती तलवारें कुछ इस प्रलय की आग बरसा रही थीं कि आध घण्टे के भीतर ही

भीतर चारों तरफ लाशें ही लाशें दिखलाई पड़ने लगीं। यह युद्ध एक गजब ढा देने और शत्रुओं को दहला देनेवाला था। इसमें न तो व्यूह बांधने का ख्याल रखा गया था और न फौजी कवायद का ही इन्तजाम था।

जिस प्रकार बहादुर मानसिंह निहायत जवांमर्दी से अपने सिपाहियाना करतबों को दिखा कर शत्रुओं को आश्चर्य तथा विस्मय में डाल रहे थे। उसी तरह राजा पर्वतसिंह के नवयुवा सपूत सतेन्द्रसिंह भी अपनी बहादुरी दिखाने में जादूका काम कर रहे थे। वीर राजपूतों का कदम रह रह कर आगे ही को बढ़ता था। वे मर कर गिर जाते, लाशों के ढेर में उलझ और शत्रु का शिकार बन कर, औंधे मुंह हो गिर पड़ते, पर पीछे को न हटते। आखिरकार शत्रुओं को काटते मारते, उनको पीछे हटाते, लाशों के ढेरों को चहलते, रौंदते वे अहमदशाह की हाथी के समीप पहुंच गये। इस समय वीरपुत्र सतेन्द्रसिंह ने गजब की वीरता दिखाई। वह शत्रुओं को काटते, दुश्मनों की वार का जवाब देते हुए बिलकुल अहमदशाह की हाथी के पास चले गये। नवयुवा की इस असीम वीरता को देखकर, दोस्त और दुश्मन दोनों के दिलों पर एक किस्म की हैरतसारी छा गई और चारों तरफ सन्नाटे का आलम दिखलाई पड़ने लगा!!!

बहादुर सतेन्द्रसिंह की तलवार हवा में तनी। अभी उसकी चमक उपस्थितों की आंखों में अच्छी तरह चकाचौंधी फेरने भी न पाई थी कि बहादुर के तुले हुए हाथ के वार ने हाथी का रेशमी कमरबन्द काट दिया और बादशाह मय हौदे के नीचे आ गया।

बादशाह का हाथी से गिरना था कि चारों तरफ से

बड़ा हल्ला हुआ। राजपूतों के जय जयकार और मुसलमानों की चिल्लाहटों से समरभूमि गूंज उठा और उसकी प्रतिध्वनि आस्मान से होने लगी।

इसमें कोई सन्देह न था कि सतेन्द्रसिंह का दूसरा वार बादशाह का सिर अलग करने के साथ ही इस भीषण लड़ाई और खून की बहाने वाली नदी का खातमा कर देता परन्तु शोक! बिधाता बाम हो गये, विजयलक्ष्मी ने दावँ दे दिया। उस वीर को जरा भी अवकाश न मिल सका। अहमदशाह का गिरना था कि सतेन्द्रसिंह की तलवार भी टूट गई। साथ ही किसी कोमल स्वर ने यह कहकर "भाई! यह तलवार है लो।" उसके हाथ में एक तलवार दे दी। पर इतने में वह मौका हाथ से निकल गया।मुसलमान सिपाहियों ने आगे बढ़ कर सतेन्द्रसिंह को घेरे में ले लिया और अपने बादशाह की जान बचाने के लिये दिल तोड़ मार करने लगे।

अब पाठक! जरा सतेन्द्रसिंह को तलवार देने वाले राजपूत (या जो कुछ हो) का हाल सुनिये। यह तो आपको पहिले ही मालूम हो गया है कि अहमदशाह के गिरते ही उसकी सेना दिल तोड़ कर मार करने लगी और उसने सतेन्द्रसिंह को चारों तरफ से घेर लिया इधर इस राजपूत ने भी लपक कर एक यवन के हाथ से एक तलवार छीन ली और मौका देखकर अहमदशाह के सिर पर एक कारी वार किया। परन्तु निष्फल! यह भी व्यर्थ हुआ। ज्योंहीं इस राजपूत की तलवार तनी और गिर कर चाहती थी कि उसके पापमय जीवन का खतमा कर दे कि उसके पास पहुंचे हुए एक यवन सरदार ने उसके वार को अपनी चौड़ी

ढाल पर रोक कर अहमदशाह को बचा लिया। उधर एक दूसरे मुसलमान ने उसपर एक कारी वार किया। इधर भी इसके साथ के एक दूसरे राजपूत ने अपनी तलवार पर उसकी तलवार को लेलिया। पर शोक! इसकी तलवार कटकर उसी वीर राजपूत के जा लगी। उसके सिर से खून का एक तेज फौवारा निकलने लगा और वह वहीं मूर्छित होकर गिर पड़ा। पर वाह! साथ ही किसी के कोमल मुंह से निकला "मधुर!" कि एक बिजली सी चमक गई। और एक राजपूत ने उछल कर एक यवन सवार को घोड़े से मार गिराया और उस पर उसी राजपूत को सवार करा कर सतेन्द्र-सिंहको तलवार देने वाले वीर की लाश को उसकी गोदमें डाल कर ज्योंहीं पयान का परामर्श किया है त्योंहीं एक धोकेबाज मुसलमान सैनिक ने पीछे से एक भीषण वार कर मधुरसिंह को मुर्दों में शामिल कर लिया।

आध घण्टे तक भयानक मार काट होती रही। मैदान-जङ्ग में खून की नदी बहने लगी और सिपाहियों के सिर मछलियों की तरह इधर उधर तड़प तड़प कर ठण्ढे होने लगे।

शाही लश्कर के सामने भला राजपूतों की बसात ही क्या थी? यद्यपि उनके तलवारों ने बड़ा काम किया। पर अब उनकी संख्या घटते घटते बहुत ही कम रह गई थी। जितने राजपूत दुर्ग आहोर से निकले थे। इस समय उनकी चौथी संख्या बच गई थी।

तिसपर अब तमाम शाही सेना लैसतैस होकर चारों तरफ से उमड़ आई थी। यद्यपि राजपूत इस समय बिलकुल घेरे में पड़ गये थे। तथापि उनकी वीरता सराहने योग्य थी।

यद्यपि एक एक राजपूतों के सामने दस दस तलवारें तनी हुई थीं तथापि वे हिम्मत-पश्त न होकर और भी जोश के साथ लड़ रहे थे ! युद्ध का परिणाम उन्हें पहिले ही मालूम हो गया था। इससे वे इसकी जरा भी परवाह न कर बराबर जोर शोर से लड़ रहे थे और शीघ्र मौत की बाट देख रहे थे।

राजा पर्वतसिंह भी बराबर सिपाहियों की तरह तलवार मार रहे थे। साथ ही उनका प्रधान सेनानायक भी। यद्यपि उनके देखते देखते कितने ही राजपूत सुरधाम को पहुंच गये थे, उफ पर वे भी न करके बराबर तलवारों की आग से शत्रुओं को जला रहे थे। वाह रे तेरी बहादुरी !!!

वह पहिले ही की तरह अब भी फुरती और चालाकी के साथ सिपाहगिरी के करतब दिखा रहे थे। उनकी तलवार और तीरों ने सैकड़ों म्लेच्छों के खून पानी की तरह बहा दिये। परन्तु अब वह समय भी आ गया जब कि मृत्यु की अचूक तीर उन्हें अपना निशाना बनाये। वह बड़ी बहादुरी से शत्रुओं को मौत की घाट पहुंचा रहे थे कि एक कायर यवन का विषैला तीर आकर उनकी छाती में लगा और वह सदा के लिये वहीं सो गये !!!

अब इतनी मुहलत कहां थी कि वीर राजपूत अपने बहादुर राजा को खाक और खून में लोटते देखकर शोक प्रकट करते या उसकी लाश को लेकर समरभूमि से निकल जाते। परन्तु उन्हें तो मरना मंजूर था। इससे उन्हों ने उस लाश की कुछ भी परवाह न करके सतेन्द्रसिंह को अपना मुखिया बनाया और वे पहिले से भी कहीं ज्यादा जोश के साथ लड़ने वे मार काट कर मरने लगे। पर आह ! सतेन्द्रसिंह भी बहुत देर तक इस पद को सुशोभित न कर सके। एक

तो वह पहिले ही से बहुत घायल हो गये थे दूसरे, इस घमासान के युद्ध में और भी चोटें लगीं। मतलब यह कि मौत के नरुकने वाले हाथ ने उन्हें भी समरभूमि में लिटा कर आदर्श-शहीद बना दिया।

सेना-नायक, राजा पर्वतसिंह और सतेन्द्रसिंह के मृत्यु की घाट उतर जाने पर राजपूतों को पहिले बड़ा दुःख हुआ पर साथ ही वे सम्हले उनका शोक असीम क्रोध से बदल गया। वे बड़ी तेजी के साथ दुश्मनों पर टूट पड़े और देखते देखते चारों तरफ घमसान युद्ध होता दिखलाई पड़ने लगा। किन्तु राजपूतों की संख्या अब बहुत ही कम रह गई थी और असंख्य मुसलमानों के लिये इन थोड़े राजपूतों को तलवार की बाढ़ पर रख लेना कोई कठिन काम न था। यह भयानक घमासान युद्ध बहुत थोड़ी देर में खतम हो गया और दुर्ग आहोर के वीर और आदर्श राजपूत एक एक करके कट गये। परन्तु मरने के पहिले भी वे बीस हजार म्लेच्छों को यमपूरी का रास्ता दिखा गये!!!

सूर्यवंशियों के विनाश का यह भयानक और रोमांचित दृश्य भगवान-सूर्य से भी न देखा गया। झट ही उन्होंने अपनी प्रचण्ड और प्रखर किरणों को पिलेपन से बदल दिया। साथ ही साथ सन्नाटा छा गया। चारों तरफ निस्तब्धता दिखलाई पड़ने लगी।

आह! वीर और आदर्श राजपूतों की लाशें बेकशी के आलम में दुर्ग आहोर के सामने, खुले मैदानों में पड़ी हुई थीं उनके सिरहाने रोनेवाला सिवाय शोक, दुःख और लाचारी के और कोई भी न बचा था। शोक! मरने वालों के कुल का अब कोई भी न रह गया था जो इनकी दुःखमयी

दशा को देखकर दो आंसु बहाता ! ! !

मारे जाने वाले बीस हजार म्लेच्छों में, जिनकी संख्या राजपूतों से दसगुनी थी, बहुत बड़े बड़े अफसर थे। पर जीत की खुशी में अहमदशाह के दिल पर इनके मरने का कुछ भी शोक न हुआ और न उनके मरने पर कोई मातम करता दिखलाई पड़ता था !

चारों तरफ से घूमते घामते विजयी अहमदशाह पर्वत-सिंह की लाश के समीप आया । उसने उसपर बड़ी घृणा के साथ थूंका और तलवार के कब्जे से उस लाश को सिर में ठोकर देकर, दबी जबान से कुछ कहा । उसकी बातें पूरी तरह से तो समझ में न आईं । पर जो कुछ सुनाई पड़ा वह यह था:—पर्वतसिंह !..........काफिर !........तू इसी सजा के काबिल था.........देखा ! अहमदशाह के साथ उलझ कर कैसी सजा पाया.........मलून !.........”

एक ऐसे वीर की शान, में ऐसे दुर्वाक्यों ने पाठकों के दिल पर कैसा असर किया होगा । इसके विषय में कुछ न लिख कर इसके अन्दाजा का भार हम अपने प्रेमी पाठकों ही पर छोड़ते हैं, वे विचारें कि अहमद-शाह सिंध का बादशाह होने पर भी कैसा नीच प्रकृत वाला था । हमारे बहुत से देशी भाई भी आजकल जब-र्दस्ती हाकिमों का कृपापात्र बनने के लिये सच्चे स्वदे-शियों और अपनी उन्नति चाहने वाले भाइयों की शान में भला बुरा कहा करते हैं और झूठ मूठ एक न एक फेसाद खड़ा किया करते हैं। परन्तु क्या, इससे उन कृपापात्रों की संसार की दृष्टि में कभी भी इज्जत होगी ? कभी नहीं। क्या हमारे न्यायवान पाठक, अहमदशाह की इस कार्यवाही

को कृपा की दृष्टि से देखेंगे? नहीं, कभी नहीं। जिस प्रकार अहमदशाह का यह दुर्वाक्य हमारे प्रेमी पाठकों के दिल पर खटकता होगा उसी प्रकार आजकल के कृपापात्र भाइयों की कार्यवाही संसार के दिलों में खटकती होगी। सिपाही की कदर सिपाही जानता है। लेकिन अफसोस है कि दुष्ट अहमदशाह ने अपने धर्म्मनिष्ठा दृढ़प्रतिज्ञ आदर्श वीर शत्रु के आखिरी स्टेज में ऐसी हरकत की जिसे छोटे से छोटा सिपाही कभी भी पसन्द न करेगा।

सत्रहवां परिच्छेद।

ओफ! यह क्या!!!

इस जीत की खुशी में अहमदशाह बड़ी शानो शौकत के साथ कनकलता को हस्तगत करने के निमित्त, जिसके लिये उसने हजारों जवानों का खून पानी की तरह बहाया था। बड़ी धूमधाम से मय खास खास लोगों के दुर्ग आहोर में घुसा। किन्तु वहां का भयानक दृश्य देखते ही, क्योंकि सम्पूर्ण औरतें जल कर राख हो गई थीं, तमाम जवाहिरात जला कर खाक कर दिये गये थे, उसके आश्चर्य की सीमा न रही। तुरन्त ही आशा निराशा से बदल गई। उसने खूब दृष्टि पसार कर देखा किन्तु चारों तरफ राखों के सिवाय उसे कुछ भी न दिखलाई पड़ा और वह "ओफ! यह क्या!!!" करके रह गया।

इधर अहमदशाह की यह दशा हुई। अब जरा उसकी सेना का वृत्तान्त सुनिये। विजयी सेना बड़ी खुशी से किले के भीतर पहुंची और उसे आशा थी कि लूट के माली असबाब

से हम लोग माला माल हो जायंगे। परन्तु उसे भी बड़े आश्चर्य के साथ अपनी सारी आशाओं पर पानी फेरना पड़ा क्योंकि तमाम असबाब भी औरतों के साथ जल कर खाक स्याह हो गये थे।

दुर्ग आहोर का निस्तब्ध और भयानक दृश्य देखकर सम्पूर्ण म्लेच्छी सेना पर आलमतारी छा गया और सब भौंचक से खड़े रह कर आश्चर्य के साथ एक दूसरे का मुंह देखने लगे!!!

इधर सेना की यह दशा थी उधर अहमदशाह बड़ा बेचैन हो रहा था। एकाएक उसके मुंह से एक हाय निकली और वह वहीं फटफटा कर रह गया। फिर उसकी जबान से यह शब्द निकल गयेः—

"आह! जिस कनकलता के लिये मैंने इतनी तकलीफें सर पर उठाईं, जिसके वास्ते हजारहो आदमियों का खून पानी की तरह बहाया और ऐसे फेल का मुरतकिब हुआ, जिसके बदले मेरा नाम तारीख के सफहों पर जालिम और सितमगार ऐसे नापसंदीदह अलफाज के साथ लिखा जायगा। हाय इतना होने पर भी वह मेरे हाथ न आई!!!"

इतना कहने के साथ ही वह बड़ा बेचैन दिखलाई पड़ने लगा। यदि उसके मुसाहिबों ने उसे थाम न लिया होता। तो वह गश खाकर वहीं गिर पड़ता और खून से तरातर हो जाता। अहमदशाह की ऐसी दशा देखकर सेवकों ने दौड़ कर उसके मुंह पर गुलाब छिड़का और पंखा झलना शुरू किया। थोड़ी देर में उसे होश हुआ और उसने टिमटिमाती हुई आशा रूपी चिराग के भरोसे अफसरों को हुकम दियाः "जाओ! और अच्छी तरह तफतीश करो और इस बात का

सही सही पता लगा कर हुजूरी में खबर दो कि अया कनकलता सचमुचही जल कर राख हो गई या उसके मिलने की कुछ उम्मेद की जा सकती है।"

हुक्म मिलने की देर थी। सिपाही चारों तरफ दौड़ गये। पर हर एक को नाकामी रही। वह समय बड़ा ही शोकजनक था जब कि सभों ने वापस आकर अहमदशाह से बयान किया कि "जहांपनाह! अब किसी का पता नहीं लगता। यहां जितनी औरतें थीं सब जल कर खाक हो गईं। जो कुछ बची थीं वह मैदानजङ्ग में लड़ मरी। इस किले में अब एक औरत का नाम भी नहीं है।"

यह सुनकर अहमदशाह को बड़ा दुःख हुआ। उसने अपने को सम्हाल और साहस कर पूछाः—"क्या औरतें भी मैदानजङ्ग में गई थीं!!!"

एक ने कहाः—"जहांपनाह का फरमाना बजा है।"

उत्तर पाकर अहमदशाह को दांतों अंगुली दबानी पड़ी। वह पछताता हुआ अपने शिविर में जाकर बिस्तरे पर लेट रहा। पर नीन्द कहां? पहिली रात यानी जब उसने कनकलता की सुन्दरता की तारीफ सुनी थी, जिसमें उसे खुशी के मारे नीन्द नहीं आई थी उसी प्रकार आज वह असीम दुःख और हार्दिक बेदना से रात भर करवटें बदलता रहा, तड़प तड़प कर बड़ी मुश्किलों से उसने वह रात बिताई सबेरा हुआ, सूर्यभगवान के दर्शन भी, न होने पाये थे कि शिविर के दरवाजे पर एक आदमी आ खड़ा हुआ। सन्त्री ने पूछाः—"कौन।"

उसने उत्तर दियाः—"जासूस। कनकलता के जीते रहने की खबर लाया हूं।"

अहमदशाह के कान तो उठे हुए थे। उसने सन्त्री के जवाब देने के पहिले ही, भीतर आने की आज्ञा दी। जासूस भीतर गया और अहमदशाह ने बड़ी आतुरता से पूछाः—"कहो, कहो। कनकलता की क्या खबर लाये हो। क्या वह जीती है?"

जासू०। हां वह जीती है।

यह सुनते ही अहमदशाह उछल कर उठ बैठा और उसने बड़ी खुशी से पूछाः—"हां! तो फिर वह है कहां?"

जासू०। मैदानजङ्ग में उसे चोट आ—

अह०। (बात काट कर) क्या कहा? मैदानजङ्ग में!!! क्या वह लड़ने गई थी!

जासू०। जी हां। वह लड़ने गई थी मगर एक हल्की चोट के लगने से वह बेहोश हो गई। इससे उसके खबरगीरों ने उसे भीमसिंह के पास पहुंचा दिया। वह अब वहां भली चंगी है।

अह०। (आग्रह से) भीमसिंह कौन? और वह रहता कहां है?

जासू०। वह भी एक राजपूत है। यहां से उसकी गढ़ी सिर्फ दस मील की दूरी पर है।

अह०। बहुत खूब! लेकिन हां, क्या तुम सच कहते हो?

जासू०। मुझे झूठ से फायदा? और मेरी मजाल क्या जो मैं झूठ बोलूं।

अह०। अच्छा जाओ। अगर तुम्हारी बात सच निकली तो तुम्हें बहुत ईनाम दिया जायगा।

जासूस खेमे के बाहर निकल कर एक तरफ को चला गया। इसके बाद अहमदशाह बड़ी खुशी से खेमे के बाहर

निकला और फौरन कूंच की उसने आज्ञा दी । हुक्म के ताबेगीर सिपाह बादल की तरह उमड़ कर शाम होते ही गढ़ी पर जा पहुंचे और सभों ने उसके चारों तरफ घेरा डाल दिया ।

अट्ठारहवां परिच्छेद ।

यह तो न होगा ।

कनकलता को घायल होकर पर्वतसिंह के परममित्र भीमसिंह के यहां आये हुए लगभग एक सप्ताह के हो गये हैं । सुकुमार बालिका को लड़ाई में एक हल्की ही सी चोट कारी हो गई थी । सच है, क्यों न होती ? जिस बालिका ने पुष्पों के बिस्तरे पर सोने के सिवाय और कोई काम नहीं किया था उसे तो जरा सी ठोंकर ही काफी है। परन्तु उसे तो तलवार की चोट लगी थी फिर वह उसे क्यों न भारी जान पड़े ?

निदान, उसके सिर का घाव तीन ही चार दिनों में अच्छा हो गया । पर वह अपने पिता, भाई और वीरों के वीरगति प्राप्त होने के समाचार के सुनते ही पागल सी हो उठी, उसका हृदय खण्ड खण्ड हो गया, दुःख के मारे उसकी छाती फट गई, कलेजा टुकड़े टुकड़े होकर गिर पड़ी । मतलब यह कि उसे एक किस्म की सनक सवार हो गई । वह कभी सनक कर आपसे बाहर हो जाती और बकने झकने लगती । यद्यपि भीमसिंह ने उसे बहुत तरह से समझाया, अनेकानेक प्रकार से ढांढस बँधाई, नाना प्रकार से दिलासा दिया । प- परन्तु क्या टूटा हुआ पत्थर जुट सकता है ? क्या दुःख से

खण्डित हृदय कभी बातों की ढांढस से बंध सकता है? नहीं, कभी नहीं। उसे किसी प्रकार से ढांढस न बंधा, जरा भी सन्तोष न हुआ। निदान, अचानक एक दिन उसे एक चाल सूझ पड़ी। और उसी ने उसे अपना प्रधान लक्ष बनाया।

रात आधी के बीत चुकी है। चारों तरफ सन्नाटे का आलम छाया हुआ है। जिधर दृष्टिपात कीजिये सन्नाटा! जिसे देखिये वही निरव! कहीं से भी कोई शब्द नहीं सुनाई पड़ता। चारों तरफ निस्तब्धता छाई हुई है। जान पड़ता है निशादेवी ने भी कनकलता की हृदय को दो टूक करने वाली रुलाई सुनने के लिये मौन धारण किया है। दीवारों ने भी, कनकलता की छाती फाड़ रुलादेने वाली, रुलाई को सुनने के लिये, निरवता, निस्तब्धता और मौन का अवलम्बन किया है। इन दोनों को चुप और निरव देखकर हवा ने भी सन्नाटा खींच लिया है। इसी से चारों तरफ सन्नाटे का आलम छाया हुआ है। और कहीं से भी किसी प्रकार का शब्द नहीं हो रहा है। इसी सन्नाटे के समय में एकाएक कनकलता अपने बिस्तरे से उठी। और चुपचाप धीरे धीरे शयनागार में टहलने लगी। फिर धीरे धीरे उसके मुंह से आवाज भी निकलती सुनाई पड़ीः—"हैं! मंजुला जिस दिन से अहमदशाह को मेरे यहां रहने की खबर दे आई, उस दिन से वह फिर मुझसे नहीं मिली। क्यों उसे क्या हो गया (सनकियों की तरह हँस कर और अपने सीने से एक तेज और चमचमाता हुआ कटार निकाल कर) आओ प्यारी कटार! आओ। मैं तुम्हें चुमूं, आंखों से लगाऊं, क्योंकि तुम्हीं मेरे प्यारे बाप के खून का बदला लोगे शत्रु की छाती फाड़ोगे और मेरे कलेजे को ठण्ढा करोगे (उ-

सको चूमती है और आंखों लगाती है) ओह! (उसे गौर के साथ देखती है) पर जिस तरह तुम ऊपर से देखने में भली जान पड़ती हो। उसी तरह तुम्हारा छिपा हुआ काम बड़ा ही भयानक है (उसे दूर फेंक देती है) जा दूर हो, तुम जैसे फरेबी लोगों की मुझको जरूरत नहीं है। तुझ जैसे धोकेबाज लोगों की मुझमें चाहत नहीं है (होश में आकर है) हे दुर्गे! हे माता! अब शीघ्र मेरी प्रार्थना स्वीकार करो।"

इसके बाद, उसे किसी के पैरों की चांप सुनाई पड़ी। झट से उसने कटार को उठा कर छाती में छिपा लिया। इतने ही में उसके पिता तुल्य भीमसिंह उदास मन से उसके सामने आये और बोलेः—"बेटी! प्यारी कनकलता! अभी अभी तुम क्या कह रही थी?"

कन०। कुछ तो नहीं पिता जी।

भीम०। नहीं बेटी, जान पड़ता है कि तुम्हारा दिमाग बाप, भाई और वीरों के मरने के दुःख से खराब हो गया है। पर इस बात पर तो तुम्हें खुश होना चाहिये कि उन्हों ने वीर क्षत्रियों की तरह लड़कर वीरगति को पाया है। यद्यपि हमारी देख में वे इस संसार में नहीं हैं। परन्तु उनके नाम न मिटने वाली स्याही से सदा के लिये संसार पर लिख दिये गये हैं और वे अब सूर्यभगवान और चन्द्रदेव के समान सदा चमकते रहेंगे। बेटी! इस दुनियां में जो आया है वह एक दिन जरूर ही मरेगा, किन्तु क्षत्री की वह मौत जो समरभूमि में आये, मौत नहीं कहलाती है।

कन०।। नहीं। मैं उदास नहीं हूं। पर इतना अफसोस जरूर है कि काश मैं भी लड़ाई में काम आई होती।

या पैदा ही न हुई होती। क्योंकि यह सारी आफतें मेरे ही कारण आई हैं। क्या कोई भी मेरे सिवाय दूसरा कारण बता सकता है?

भीम०। यह बहुत ठीक है। परन्तु जब बिधाता ही को ऐसा मंजूर था तो भला उसको कौन टाल सकता है। सो अब तुझे उदास नहीं होना चाहिये जो कुछ ईश्वर की इच्छा हुई वही हुआ और आगे उसकी जैसी इच्छा होगी वही होगा। अच्छा, अब इन बातों को जाने दो और एक भयानक खबर सुनने के लिये तैयार हो जाओ।

कन०। (भीतर से हँस पर ऊपर से आश्चर्य दिखला कर) भयानक! भयानक! अब मेरे लिये ऐसी कौन सी भयानक खबर है। जिसे सुनने के लिये मुझे तैयार हो जाना चाहिये।

भीम०। वह भयानक खबर यही है कि अहमदशाह मेरी गढ़ी को भी तीन दिन से घेरे पड़ा है।

कन०। (एकाएक) बस इतना ही! बस कनकलता को उसके हवाले कर दो। सारा मामला तय है।

भीम०। उसकी भी तो यही मंशा है। पर मेरे जीते जी वह क्योंकर अपने इरादे में कामयाब हो सकता है।

कन०। (आश्चर्य से) तो क्या उसकी सेना तीन दिन से घेरा डाले पड़ी है और मुझे खबर तक न हुई?

भीम०। बेटी! तुम्हें खबर क्योंकर होती। तुम तो दिन रात चुपचाप अपने बिस्तरे पर पड़ी रहती हो। आज भी तुम्हें इसकी खबर न होती पर थोड़ी देर हुआ है मुझे खबर लगी है कि तुम उठी हो। इससे खबर देने आया हूं क्योंकि सबेरा होते ही मार काट शुरू हो जायगी।

कन०। नहीं, नहीं। मार काट की न ठानो

क्योंकि तुम में उस के मुकाबले की ताकत नहीं है ।

भीम० । तुम्हारा कहना तो बहुत ठीक है । पर राजपूतों को इसकी परवाह ही क्या है ?

कन० । फिर इसका नतीजा ?

भीम० । मारना और मर मिटना ।

कन० । इससे कुछ भी लाभ नहीं । और न मैं अपने वीरों का अब ज्यादा खून करवाना चाहती हूं । प्यारे बाप ! लड़ाई नहीं । मार काट की दिल में न ठानना ।

भीम० । यह किस तरह हो सकता है । असम्भव ! गैर-मुमकिन ! ! !

कन० । नहीं ! सम्भव ! मुमकिन ! ! ! जैसा मैं कहती हूं । आप वैसा ही करें और मुझे अहमदशाह के हवाले कर दें ।

यह सुनते ही वह काठ हो गये । कनकलता की बातों ने भीमसिंह के दिल पर वह असर किया जो शायद शत्रु का विषैला तीर भी न कर सकता । उनके ललाट पर बल पड़ गये । उनकी आंखों से आग की चिनगारियां निकलने लगीं और उनके चेहरे से गुस्से के मारे लहू फूटने लगा । धीरे धीरे उन्होंने अपने को सम्हाला और कहाः—"हैं ! कनकलता ! मैं तुम्हारे मुंह से कैसी बातें सुन रहा हूं ! ! ! तूने यह क्या कहा ? क्या मेरे कानों ने तेरी बातों को गलत सुना है ।"

कन० । नहीं, नहीं पिता जी ! आपके कानों ने बहुत सही सुना है । जो कुछ मैंने कहा है मसलहत से कहा है और आपको यही मानना भी पड़ेगा ।

भीम० । नहीं, कभी नहीं । क्या वीर पर्वतसिंह की लड़की अपने आदर्श बाप, भाई और वीरों के खून बहानेवाले

दुष्ट अहमदशाह के साथ जाने के लिये तैयार है ? ऐसा कभी भी नहीं हो सकता ! मैं जान गया, समझ गया। कनकलता ! तू इस समय हवास में नहीं है। दुःखों ने तेरे हवासों का खून कर डाला है ! निसन्देह तू पागल और बदहवास हो गई है !!!

कन०। नहीं, नहीं मैं होश हवास में हूं। मेरे दिमाग में फतूर नहीं पड़ा है। मैं देखती हूं कि मुझे कोई नहीं बचा सकता, मेरे बाप का कोई बदला नहीं ले सकता। और यह कनकलता उसके खून की प्यासी हो रही है। बदला की आग इसके दिल में धड़क रही है। इससे मैं आपसे प्रार्थना करती हूं, हाथ जोड़ती हूं, आप मुझे उसके हवाले कर दें मैं समझ लूंगी।

कनकलता की बातों को सुनकर भीमसिंह घतमणा गये। उन्होंने अपने दिल में कहा, लड़की दीवानी हो गई है। इसकी बातों का क्या ठिकाना ? कहीं मुझे धोखा तो नहीं देती है ? ओफ ! इस समय इसके शरीर से क्षत्रियों का खून क्या हो गया ! अहमदशाह, जिसने इसके बाप भाई और प्यारे वीर राजपूतों का खून बहाया है, यह अब उसी के साथ जाने को कहती है। शोक ! इसको अपनी मर्यादा और प्रतिष्ठा का ख्याल क्यों जाता रहा ? आह ! जिस घराने ने अपनी इज्जत बचाने के लिये अपने को चौपट कर डाला, जिसने जानबूझ कर आग में कूद कर अपने को आहुति बनाया; उसी की लड़की अपने घाती शत्रु के साथ जाने को कहती है। हाय ! इस समय इसके ख्याल ऐसे क्योंकर हो गये !!!

फिर वे धीरे धीरे बोलेः—"क्या मैं स्वप्न देख रहा

हूं ? क्या मेरा सिर चक्कर खा रहा है ? क्या मैं अपने आप में नहीं हूं ?"

कन०। नहीं। आप अपने आप में हैं। जो कुछ आप देख रहे हैं वह सही है। जो कुछ आप सुन रहे हैं अब वही होगा।

भीम०। क्योंकर ! कभी नहीं !

कन०। जिद्द न करिये, अवश्य वही होगा।

भीम०। अपने जीते जी तो मैं ऐसा नहीं होने दूंगा।

कन०। अवश्य यही होगा, नहीं तो मैं आत्म-हत्या करूंगी।

भीम०। मेरे जीते जी तू ऐसा भी नहीं कर सकेगी।

कन०। अवश्य करूंगी, नहीं तो रात को गढ़ी का फाटक खोल दूंगी।

यह सुनते ही भीमसिंह को चक्कर आ गया। यद्यपि उन्होंने अपने आपको बहुत सम्हाला। पर वे सम्हल न सके। वहीं गिर कर बेहोश हो गये और उनके मुंह से आपसे आप निकल गया "मुझसे तो ऐसा नहीं होगा।"

भीमसिंह के मुर्छित होकर गिरने से गढ़ी में बड़ा कोलाहल मच गया। लोग दौड़ कर आये और भीमसिंह को शयनागार में ले गये। इसके साथ ही चारों तरफ कनकलता की बात भी फैल गई। तमाम राजपूतों ने दातों अंगुली दाबी। किसी से कुछ कहते सुनते नहीं बना !

सच है, यह दुनियां दुरङ्गी है। इसमें हर जगह हर किस्म के आदमी पाये जाते हैं। जहां वीर रहते हैं वहां कायरों का रहना भी जरूरी है। निदान इस मौके पर कायरों ही की बन आई। उन्हों ने समझा बुझा कर कुछ कार्य कर्ताओं

को अपने मन माफिक बना लिया। अतएव कनकलता के कथनानुसार कार्यवाही करने की वे तैयारी करने लगे और सभों ने ठान लिया कि सबेरा होते ही इस कंटक को यहां से दूर कर देंगे। "हरेरिच्छावलियसी।"

इधर मौका देखकर मंजुला भी कनकलता से आ मिली और दोनों ने कार्यक्षेत्र का आखिरी ड्राप गिराना निश्चय किया।

उन्नीसवां परिच्छेद।

धन धन भारत की क्षत्राणी।
सती शिरोमणि धर्मधुरन्धर बुधिबल धीरज खानी॥
तुम्हरे यश को तिहुंलोक में अमल धुजा फहरानी।
वीर कन्या, वीर प्रसविनी, वीर बधू जग जानी॥

आज रुपहली झील में बड़ी धूम धाम मची हुई है, बड़ी चहल पहल दिखलाई पड़ रही है, जगह जगह तैयारियां हो रही हैं। जिधर देखो उधर ही नई रङ्ग, नई ढङ्ग, नयी वजह दिखलाई पड़ रही है। मतलब यह कि चारों तरफ तैयारियों पर तैयारियां हो रही हैं, सजी हुई चीज फिर से साजी जा रही है। खुशी के नक्कारे बज रहे हैं। रौशनचौकियां गजब का सुर अलाप रही हैं कि सुनने वाला मोहित हुआ जा रहा है।

प्यारे पाठक! आज पुनः आपको हम सिलवर लेक यानी रुपहली झील पर ले चलना चाहते हैं। जहां एकबार पहिले भी आप चांदनी रात में अहमदशाह को बजड़े पर आनन्द मनाते हुए देख चुके हैं।

इस झील के किनारे पर जो संगमरमर का मनोहर महल बना हुआ है। उसी के एक सजे सजाये कमरे के भीतर सुन्दरी कनकलता एक खुशनुमा पलंग पर लेटी हुई दिखलाई पड़ रही है। यद्यपि पाठक! आप लोगों का दिल इसकी तरफ से हट गया होगा और सम्भव है कि आप अब इसकी सूरत से भी बेजार हो गये हों क्योंकि, यह कुलघातक म्लेच्छ बादशाह अहमदशाह के साथ शादी करने की कौन कहे वरन् उसके साथ चली भी आई है। इससे वास्तव में यह इस योग्य नहीं कि कोई सच्चा धर्मपरायण हिन्दू इसका मुंह देखना पसन्द करे। पर प्यारे पाठक! यदि आपकी इच्छा भी न हो तो जरा हमारी बात रख कर इस समय के इसकी हालत को देखिये कि यह उदास और चिन्तित क्यों दिखला रही है? इसे तो दूसरे लोगों की तरह जो आज खुशी के कारण पगे जा रहे हैं, प्रसन्न होना चाहिये। हैं इसका कारण क्या! इसकी जिद्द और अहमदशाह के साथ खुशी खुशी जाने के इरादे ने तो तमाम राजपूतों को आश्चर्यित कर दिया था! फिर इसकी इस उदासी का कारण क्या? जरा गौर से तो देखिये? इसकी आंखें कैसी लाल हो रही हैं और ऐसा जान पड़ता है कि मानों यह बहुत देर से पड़ी रो रही है। पाठक! आप चाहे जो समझें। पर हम तो यही कहेंगे कि "धन धन भारत की क्षत्राणी।"

देखिये, देखिये! सामने से बादशाह की एक खास खवास आ रही है। आइये हम और आप छिप कर सब लीला देखें।

खवास आकर सीधे कनकलता के कमरे में चली गई। उसे देखते ही कनकलता ने तुरन्त अपने आपको सम्हाला।

आंखों को मचल कर दुपट्टे के आंचल से उन्हें साफ किया और ऐसी सूरत बना कर बैठ गई मानों उसे किसी प्रकार की चिन्ता ही न थी।

खवास ने कहाः—"रानी साहबा! बादशाह का हुक्म हुआ है कि आज रात को निकाह होगा। इससे तैयार रहना चाहिये।"

कन०। (मन में कुछ भुनभुना कर) फिर मुझे उज्र ही किस बात में है? मैं बादशाह से किसी बात में बाहर नहीं हूं। सिर्फ मेरी एक इच्छा है। सो भी अगर बादशाह मंजूर कर लेवें तो अच्छी ही बात है।

खवा०। वाह क्यों नहीं मंजूर करेंगे। वह आपकी सब बातों को बखुशी मंजूर करेंगे।

कन०। हम लोगों में यह रिवाज है कि दुलहा शादी के वक्त दुलहिन के हाथ का तैयार किया हुआ जोड़ा पहिनता है। अतएव मैं भी बादशाह के लिये एक लाल जोड़ा तैयार करके लाई हूं। आशा है कि बादशाह उसे ही पहिन कर शादी करने को आवेंगे।

खवा०। (खुश होकर) इसको तो वह खुशी से मंजूर करेंगे।

इसके बाद कनकलता ने मंजुला को पुकारा। आवाज के साथ ही वह ऊपर के मंजिल से आई और इशारा पाने के साथ ही उसने एक जोड़ा लाल कपड़ों का उसको निकाल कर दिया। वह खुशी खुशी उसे लेकर चली गई। तदनन्तर इन दोनों में धीरे धीरे कुछ बातें होने लगीं। जिसको तो हम साफ साफ न सुन सके पर इतना तो सुनाई पड़ाः—"मौका बहुत ही ठीक है।"

* * * * * * *

सूर्यभगवान अस्ताचल की ओट हुए, सन्ध्या हुई। अभी अँधेरा अच्छी तरह होने भी न पाया था कि शाही महल मोमी समादानों और बहुमूल्य झाड़ों व फानूसों से जगमग जगमग करने लगा। संगमरमर का महल मोमबत्तियों की रौशनी से चमकने लगा। जिधर देखो उधर ही अजीब छटा दिखलाई पड़ रही है। एक एक कमरे एक एक काम के लिये सजाये गये हैं और बीच का बड़ा कमरा खास शादी की गरज से ऐसा साजा गया है कि दूसरे उसके शान की टक्कर नहीं ले सकते हैं।

आखिरकार बादशाह कनकलता का भेजा हुआ जोड़ा पहिन कर उस कमरे में आया और उसने कनकलता को भी लाये जाने का हुक्म दिया कि मंजुला ने आकर कहा कि रानी साहबा जरा आपको ऊपर बुलाती हैं। यह सुनते ही वह मतिमन्द पापी प्रेम का मतवाला तुरन्त ऊपर जा पहुंचा। वह अहमदशाह को आते देख उठ खड़ी हुई और मंजुला सीढ़ी के पास जा डंटी। उसने हँस कर कहाः—"ऐन इस मौके पर, जब कि शादी की रसूमात अदा होने वाली थीं मुझे यहां क्यों बुलाया?"

कन०। सचमुच इस मौके पर बुलाना मुनासिब नहीं था। मैंने आपको बड़ी तकलीफ दी है इसके लिये माफी मांगती हूं। पर——(कनकलता चुप हो गई।)

अह०। हैं खामोश क्यों हो गई। कहो न, जो कुछ कहना हो कहो।

कन०। मैं केवल इतना ही पूछना चाहती हूं कि आप

सचमुच मेरे साथ शादी करेंगे या यों ही दिल्लगी बनाने के लिये इतना दिखवा दिखा रहे हैं ?

अह०। (मुस्कुरा कर) वाह ! तुम अभी तक इसको दिल्लगी समझती हो। प्यारी कनकलता ! मैं जान गया तुम मेरे दिली राज से नावाक़िफ़ हो वरना ऐसा सवाल कभी न किया होता। (चौंक कर) हैं मेरा सिर क्यों घूमता मालूम देता है। हैं ! हैं ! यह क्या ! मेरा दिल क्यों घबड़ाया जाता है।

कन०। बस, बस मैं जान गई (मन्द मुस्कान से) केवल मेरी दो बातों ही से आपकी तबीयत घबरा गई ? आप तो बड़ी मुहब्बत बया..... ....

अह०। नहीं, नहीं। इसका बायस तुम्हारी बातें नहीं हैं बल्कि ऐसा जान पड़ता है कि मेरे बदन में कुछ आग सी लग गई है।

कन०। (मन में खुश होकर) गरमी का मौसिम है, नये कपड़े पहिने हुए हो। इससे कदाचित् गरमी मालूम होती होगी।

यह सुनकर अहमदशाह ने दिल कड़ा किया और कामातुर होकर उसने अपना हाथ कनकलता की तरफ बढ़ाया। साथ ही एक बिजली चमक गई। उसकी इच्छा पूरी करने के बदले कनकलता ने अपनी कमर से कटार निकाल उसकी छाती में भोंक दिया और वह धम्म से एक आह करके जमीन पर गिर पड़ा।

गिरने के साथ ही उसने चिल्ला कर कहा:—"दगा ! दगा !!!"

इसके साथ ही मंजुला भी उसके पास दौड़ आई और

झपट कर बोली:—"खबरदार! जबान हिलाई कि यह खंजर भी सीने के पार हुआ।"

सच है मृत्यु एक भयानक पदार्थ है। उसके हवाले होने को मनुष्य का जी नहीं चाहता। इसी डर से, और इस आशा से कि शायद जी उठें अहमदशाह चुप हो गया और कनकलता ने कहना प्रारम्भ किया:—

"दुष्ट और अत्याचारी बादशाह! क्या तूने यह समझ लिया था कि कनकलता अब तेरे वश में आ गई! कभी नहीं! पापी! कभी नहीं, क्या कभी कोई क्षत्राणी अपने कुलघातक के हाथ आयेगी। नहीं कभी नहीं। नराधम! कनकलता सिर्फ तेरा खून करने ही के लिये यहां आई थी। अब उसकी हार्दिक इच्छा पूरी हुई। उसने तुझ जैसे घमण्डी, पापी, नारकी और अपनी सेना के जोर से अत्याचार करने वाले से अपने बाप, भाई और दूसरे लोगों के खून का बदला लिया,—मेरे दिल में शान्ति हुई,—अब मैं भी सदा के लिये मातृभूमि की गोद में सोऊंगी। अत्याचारी! तूने कितनी ही अबलाओं का सत्यानाश किया, कितने ही ललनाओं का सतीत्व जैसा आदर्श अमूल्य रत्न बलात्कार से हर लिया और फिर उन्हें मौत के हवाले किया। पापी! आज तू अपनी सजा को पहुंचा है, अपनी करनी का फल आज तूने पाया है। शैतान! अब यह भी कह देना जरूरी है कि तू अब नहीं बच सकता। वह देख तेरी आत्मा को लेने के लिये वह यमदूत खड़े हैं।"

"न बचने की बात सुन, भयभीत होकर वह चिल्ला उठा। साथ ही उसके हाथ पांव भी अकड़ियाने लगे। जिसे देखकर कनकलता सनकियों की तरह ठहाका मार कर हँसी।

इधर उसके चिल्लाने की आवाज से नीचे बड़ा कोलाहल मचा। सब के पहिले उसका खास मुसाहिब दौड़ता हुआ ऊपर आया। मंजुला तो पहिले ही से दरवाजे के पास खड़ी थी। उसने अपना विषैला कटार उसकी छाती के पार कर दिया। वह तड़प कर वहीं गिर पड़ा और गिरते ही उसका दम निकल गया।

ऊधर कनकलता बड़ी खुशी और शान्ति से दुष्ट अहमदशाह को जान तोड़ते और हाथ पांव मारते देखती रही। जब नीचे से ज्यादा लोगों के आने की आहट मिली तो दोनों (कनकलता और मंजुला) सब से ऊपर वाली बुर्ज पर चढ़ कर एकाएक झील में कूद गईं और सदा के लिये गायब हो गईं!!!

ओम् शान्ति! शान्ति!! शान्ति!!!

इति

आगे हिन्दी उपन्यास वृक्ष में "देवी या दानवी" नामक एक अपूर्व और अनूठा फल लगेगा।

Printed at Bharat-jiwan Press Benares by S. K. Varma for publisher.

एकदम नये उपन्यास ।

यदि आपको उपन्यासों का जरा भी शौक हो तो निम्न लिखित निराली पुस्तकों को अवश्य मँगाकर पढ़िये नहीं तो पछताना ही पड़ेगा । क्योंकि ये पुस्तकें अपने ढंग की अनूठी, निराली और अपना जोड़ नहीं रखती है ।

देवी या दानवी ।

इस उपन्यास की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है । यह उपन्यास आजकल के तमाम छपे हुए उपन्यासों से बिलकुल निराला है । इसके प्लाट ऐसे हैं कि जिनको पढ़ते पढ़ते कभी पाठकों को आश्चर्य के समुद्र में डूब जाना पड़ेगा । 'हबशी का सिर' वाला बयान पढ़कर भौंचकसा रह जाना पड़ेगा । प्रकृति की अद्भुत लीला देखकर दांतों अंगुली दबानी पड़ेगी, जिन्दे मुरदे की मुलाकात, शेर मगर की लड़ाई, सत्य मंदिर, अमर-जीवन, लाश की मसाल, मैंने क्या देखा ? इत्यादि बयान इसमें ऐसे चुटीले लिखे गये हैं, जिन्हें पढ़कर पाठकों को चकित, चमकित और स्तम्भित रह जाना पड़ेगा । विशेष प्रशंसा व्यर्थ है । पढ़ने ही से इसका आश्चर्यजनक व्यापार जान पड़ेगा । मूल्य केवल ।≈)

दो खून—इस उपन्यास को पढ़ने से सच्चे मित्र की मित्रताई, कपटी मित्र द्वारा उसका खून होना, स्वामिभक्त सेवक को धोखा देकर कपटी मित्र का उसके सम्पूर्ण सम्पत्ति का मालिक हो जाना फिर स्वामिभक्त सेवक का खून होना, जासूसी की बारीकी और चालाकी । अंत में सारा भेद खुलना और जैसी करनी तैसी भरनी का बयान लिखा गया है । किताब पढ़ने योग्य है उपन्यास प्रेमियों के देखने की चीज है । मूल्य ≈)

पताः—उपन्यास बहार आफिस-राजघाट, काशी ।

उपन्यासबहार मासिकपत्र की पन्द्रहवीं पुस्तक।

जयश्री

वा

वीरबालिका

(ऐतिहासिक उपन्यास)

बाबू बलभद्रसिंह रईस छावनी सीहोर
विरचित

जिसे
उपन्यास और इतिहास प्रेमियों के चित्तरञ्जन के लिये
उपन्यासबहार आफिस काशी के अध्यक्ष बाबू
जयरामदास ने प्रकाशित किया।

काशी
चन्द्रप्रभा प्रेस में, बाबू गौरीशङ्कर लाल मैनेजर के प्रबन्ध से
बाबू जयरामदास ने छपवाकर प्रकाशित किया।

सन् १९११ ई०

प्रथमवार ११००] मूल्य ।⟩

॥ सालिम मिश्री का मुरब्बा ॥

यह मुरब्बा धात को मजबूत करता और बढ़ाता है कमर का दर्द, सुस्ती और कमजोरी को दूर करता है, पाखाना खुलासा होता है, भूख बढाता है कमजोरी चक्कर, थोड़ी मिहनत में भारी थकावट और सिर के दर्द के लिये अक्सीर है, घुठनों का दर्द, पैरों की ऐंठन, आंखों की कमजोरी के लिये बारह खुराक दवा खाने से फायदा होता है। पेशाब का बार बार या बहुत आना ४० दिन के सेवन से कम हो जाता है। दिल की धड़कन को १२ दिन में फायदा करता है। दिमाग की कमजोरी जिससे आदमी पहर भर भी जमकर किसी काम में मेहनत नहीं कर सकता है। उसके लिये भी यह अक्सीर है। खुलासा यह कि इसके सेवन से बुढ़े और कमजोर आदमी भी हृष्टपुष्ट बलवान हो जाते हैं। औरतों के वास्ते भी यह मुरब्बा एक ही है। यह रसायनिक क्रियाओं से तैयार किया गया है। सब लोगों के केवल फायदे के ख्याल १६) सेर की जगह १२) सेर दिया जाता है। एक छटांक का ॥।)

दर्द दमन तैल।

यह तैल जादू का असर रखता है। इसके व्यवहार से हर किस्म का दर्द, गठिया, बायु, शरदी के सूजन बहुत जल्द २४ घंटे के भीतर अच्छे हो जाते हैं। यह हाथ पैर की ऐंठन और उनकी अकड़ को दूर करता है। फालिज और लकवे के रोगियों को भी आशातीत लाभ पहुंचाता है। चोट, मोच और सनसनाहट में तुरन्त अपना अद्भुत असर दिखलाता है। मतलब कि सिर को छोड़ ऊपरी सारे प्रकार के दर्दों के लिये यह रामबाण है। मूल्य प्रति शीशी १ डाक वय ।=)

प्रशंसापत्र।

उपरोक्त दोनों दवाओं को हमने स्वयं आजमाया और व्यवहार किया है। निसन्देह इस विज्ञापन में जितनी बातें लिखी गयी हैं वे एक एक अक्षर सत्य हैं। दर्द-दमन तैल ने तो अपना ऐसा चमत्कार दिखलाया कि मुझे चकित होना पड़ा। मेरे छोटे भाई की स्त्री की कमर को वात ने पकड़ लिया था। वह सीधी खड़ी तक नहीं हो सकती थी। इस तैल के मलने से २४ घण्टे के भीतर ही उसका कुबड़ापन जाता रहा और निरन्तर तीन दिन के व्यवहार से उसकी सब शिकायतें दूर हो गयी और अब वह पूर्ववत् भली चङ्गी है। इस से हम अपने प्रेमियों से अनुरोध करते हैं कि वे अवश्य दोनों दवाओं का व्यवहार कर लाभ उठावें और झूठे विज्ञापन दाताओं के फंदे में न फंसे क्योंकि मैं इसके गुणों से ऐसा मोहित हो गया हूँ कि सारी जिम्मेदारी बखुशी अपने सिर लेता हूँ। आशा है कि निराश लोग मेरे ऊपर विश्वास कर एकवार दोनों औषधियों की अवश्य परीक्षा करेंगे ॥

सम्पादक उपन्यासबहार काशी—

मिलने का पता :— जे. डी. स्नेहा, राजघाट-बनारस।

॥ श्रीः ॥

प्रिय पाठकवृन्द !

इस छोटी सी पुस्तक को हम आप के कमनीय कर कमलों में, विनय पूर्वक समर्पित करते हैं।

" ऐतिहासिक विवेचनायें विशेषतः प्राचीन काल की ऐसी अस्त व्यस्त हैं कि कभी २ उनका यथार्थ निर्णय करना कठिन हो जाता है।

जिस घटना पर यह 'जयश्री' रची गई है वह बहुत से इतिहासों में भिन्न २ रूप से वर्णित है परन्तु रूपान्तर से उद्देश्य सभी देशी और विदेशी लेखकों का एक ही है।"

इस घटना को ई. लैथब्रिज महाशय अपने भारतवर्षीय इतिहास में इस प्रकार लिखते हैं:—

As early as the fifteenth year of the Hijrat (A.D. 33) during the reign of khalif Umar, the Muhammaden Governor of Oman in Arabia (named Abul Asi) made an expedition to Thana near Bombay and came back with some looty. Many similar plundering excurions were made during the reigns of the early khalifs; they were invariably successful and the Arabs returned to their country laden with the spoils of the rialy valley of the lower Indus.

At length, when a, san guinary tyrant named Hajjaj was Governor of Irak, larger expedition was planned which resulted in the temporary conquest of Sind by the Arabs. That part of India was then under a Raja named Dahir, and under him were many rialy and popular cities of which the chief were

Daebal, Isrohmanabad, Nirun, Alor and Multan. King Dahir had plundered some Arab vessels; and consequently Hajjaj despatced a strong expedition, under the command of a young and able warrior, nearly related to him, called Muhammad Kasim. He marched through Persia and Biluchistan into Sind. Debal was taken and sacked amidst terrible slaughter; the whole of Sind was subdued together with the neighbouring provinces of Siwistan and the lower Panjab. Dahir fell in a great battle A. D. 712; his son Jai Singh escaped with difficulty and see the towns of the kingdom were taken and plundered.

The people of Sind were soon to avenged. Before the caravans of plunder reached Irak, Hajjaj died; and the khalif Wahid, the Patron of Muhammad Kasim also died within a short time. The new khalif had other favourites, and Muhammad was recalled in A. D. 714, tortured and put to death.

यवन ऐतिहासिक मुहम्मद मासुम भी इस घटना का समर्थन करता है तथा अन्य ग्रन्थकारों ने भी रूपान्तर से लिखा है परन्तु आधुनिक इतिहासों में इसका चिन्ह भी नहीं है । अस्तु अपने इतिहास-प्रिय-पाठकों पर ही इसका भार हम समर्पण कर आशा करते हैं कि वह इसे उदारता की दृष्टि से देख कर अपने महत्व का परिचय दे मुझे बाधित करेंगे ।

छावनी सिहोर
आश्विन शुक्ल ३ विक्रमाब्द १८६७ } बलभद्रसिंह

॥ श्रीः ॥

ऐतिहासिक विवेचनायें।

प्रिय पाठकवृन्द, जिन ऐतिहासिक विषयों पर इस छोटे से उपन्यास में सङ्केत किया गया है, उनका प्रमाण निम्न लिखित पुस्तकों में देखा जा सकता है।

सर्व यवन ऐतिहासिक ग्रंथ श्रेष्ठ—तारीख़ फ़रिश्तः। प्रारम्भ ८७५ ई० से १६०५ तक

अबुल फ़ज़ल की (१) आईन अकबरी (२) अकबर नामा

सन् १३४१ ई० में एक आफ्रिका के पर्य्यटक ने दिल्ली में आगमन किया। उसका नाम इब्न बैतुतः था। उसका दर्बार में बड़ा आदर सन्मान हुआ और बादशाह ने उसे 'जज' बनाया। परन्तु मुहम्मद तुग़लक का दुष्ट, सन्देह युक्त तथा निर्दय स्वभाव देख कर उसने वह पद परित्याग कर दिया। बादशाह ने इसका बुरा न मान कर उसे चीन में अपना एलची बनाकर भेज दिया और इस सुहावनी चाल से उसे दिल्ली से टाल दिया। उसके (Travel) अर्थात प्रवास निबन्ध मालायें जिनका अनुवाद अंग्रेज़ी तथा फ्रेंच में है भारतवर्ष का बहुत सा बहुमूल्य वृत्तान्त है।

मुग़ल साम्राज्य के उत्तरांश का इतिहास मीर मुहम्मद ने लिखा है जो ख़फ़ीखां के नाम से प्रसिद्ध था। औरङ्गजेब की बहुत कड़ी आज्ञा थी कि कोई भी इतिहास न लिखे परन्तु मीरमुहम्मद ने इतनी कठिनता होने पर भी छिप के इतिहास लिखा इसीसे वह 'ख़फ़ीखां' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

बाबर का जीवन चरित्र। उत्बी की 'तारीख़' यामीनी।

हसन निज़ाम की 'ताजुलमआसिर' १२१० ई०

मिनहज-उस्सिराज की उपयोगी तथा विश्वस्त पुस्तक 'तबाकते नासीरी' ज़ियाउद्दीन बरनी की तारीखे फ़िरोजशाही'

शम्स से सिराज अफ़ीफ़

अब्दुल कादिर बदाऊनी } अकबर के समय में
निज़ामुद्दीन अहमद }

मोतमिदखां, जहांगीर नामा।

मुहम्मद् बिनसालेह–शाहजहां नामा।

मिरज़ा मुहम्मद क़ासिम–आलमगीर नामा।

सैयद गुलामहुसैनख़ां नवाब अलीवर्दीख़ां की सम्बन्धी जिसने अट्ठारवीं गद्दी का वृत्तान्त लिखा है (१८८३ ई०)

तीन प्रसिद्ध मुसलमान कवि,–

फ़िर्दौसी, अनासरी और अमीर ख़ुसरो।

फ़िर्दौसीने महमूद ग़ज़नवीकी प्रशंसामें शाह नामा लिखा है

ख़ुसरो ने-पद्मावत लिखा है

इसी ने दूसरी पुस्तक कैकुबाद और बुग़रा ख़ां की भेंट के विषय में लिखी है।

इन एतिहासिक ग्रन्थों में, बादशाहों के स्वभाव और चित्र चरित्र का भली भाँति वर्णन किया गया है। यदि किसी महाशय को शङ्का उठे, देखकर समाधान कर ले।

यह इतिहास–ग्रन्थ मुसलमान इतिहासकारों ने ही लिखे हैं। अतः उन्हीं के आशय पर यह उपन्यास रचा गया है और लेश मात्र पक्षपात नहीं किया गया है। इतिहासानुरागी सज्जन इसे आदर की दृष्टि से देखेंगे यह आशा की जाती है। इस तालिका से जो बहुत ही सूक्ष्म है, केवल यही प्रयोजन है कि यवन ऐतिहासिकों तथा उनके रचित ग्रन्थों से विशेष नहीं तो नाम मात्र परिचय अवश्य ही हो जावे।

श्रीः ॥

जयश्री ।

वा

वीरबालिका ।

प्रथम परिच्छेद ।

(क्रीड़ा)

किंचित्रं यदि राजनीति कुशलो राजा भवेद्धार्मिकः ?
किंचित्रं यदि वेदशास्त्र निपुणो विप्रो भवेत्पण्डितः ?
तच्चित्रं यदि रूप यौवनवती साध्वी भवेत्कामिनी ।
तच्चित्रं यदि निर्द्धनोऽपि पुरुषः पाप न कर्यात्क्वचित् ॥
(सुभाषित रत्न भांडारकम् ।)

प्रमरवंश भूषण क्षत्रिय कुलमुकुटमणि महाराज विक्रमादित्यका संवत् ७६९ है । प्रातःकालका सुहावना समय है। भगवान मरीचिमाली ने आकर संसार को देदीप्यमान कर दिया है। पुष्प-सुवासित सुखदायक समीर मन्द २ अठखेलियें करता हुआ बह रहा है। जिधर दृष्टि जाती है, उधर शांन्ति दिखलाई पड़ती है। चारों ओर वृक्षोंपर पक्षी कूंज रहे और मनहर मन्द वायु में उड्डान क्रीड़ा कर रहे हैं। इस रमणीय समय में जब कि मनुष्य तो क्या पशु पक्षी भी प्रसन्नता पूर्वक अपने २ कामों में लगे हुए हैं। ग्रामके वाह्य प्रान्त में कृषकवृन्द अपने कृषिकार्यों में उलझे हुए हैं। पशु इधर उधर चर रहे हैं। गोपालवृन्द अपने मन की उमङ्ग से कभी २ उस शान्त निस्त-

उपवन प्रान्त में ऊंचे स्वर से गा उठते हैं—जो बहुत ही कर्णप्रिय बोध होता है।

उद्यानों में—यत्र तत्र, पुष्प-प्रस्फुटित होरहें हैं। मधुलोभी मधुप मालती पुष्पोंपर घूमते हुए गुंज्जारकर रहे हैं। पुष्पों के पराग से उनका शरीर धूसरित होगया है परन्तु वे सच्चे भक्त के समान, अपना मन एकाग्र किये हुए, उधर लवलीन होरहे हैं।

इतनेही में उस शोभायमान उद्यान में मधुर वीणाध्वनि प्रारम्भ हुई। साथही किसी वीणा विनिन्दित कोकिल कण्ठ युवती का स्वर वीणा के स्वरों को लय में बाँधता हुआ सुन पड़ने लगा। कभी २ अन्य एक और कोई २ स्वर में स्वर मिलाकर साथ करता है जिससे उस सुन्दर उद्यान की सुन्दरता और समृद्धिगत हो गई है।

आगे बढ़ने पर, ओहो! देखिये उस वाटिका के बीचो-बीच वाली मरमरप्रस्तर विनिर्मित द्वादशद्वारी में कुछ सुकुमारी रमणीगण एकत्र हैं। चलिये देखिये तो। ओहो! दूर से तो सबही को दृष्टिभ्रम होता है। यहां तो समीप पहुंचने पर भी दृष्टि चौंधिया जाती है। पाठक महाशय, क्षमा कीजियेगा। उस वीणा वादिनी-वीणाविनिन्दित कण्ठवाली सामने बैठी हुई सुकुमारीकी सौन्दर्यराशि की आभा पर क्या दृष्टि ठहरती है। सौन्दर्य्यभार से वह दबी सी जा रही है। उसी के समीप उसके समान वयही कि किञ्चितन्यून, एक और नवीना स्थित है। जो कभी २ वीणा के साथ और उस वीणा वादिनी के कोकिल स्वर से साथ अपना स्वर मिलाकर सङ्गीत को और भी सरस कर देती है।

उस द्वादशद्वारी, दोनों नवीनाओं, उनका ढङ्ग, साथ की परिचारिकाओं के देखने से तो यह आपही प्रकट होता है

कि ये राजपुत्रियां हैं और अन्य उनकी सखियां अथवा सेविका। दोनों राजपुत्रियों के स्वरूप पर दृष्टि करने से-उनकी सखियां अकृति-प्रकृति का अनुमान करने से यह प्रतीत होता है-विश्वास होता है कि ये दोनों-सहोदरा हैं।

हम उनके नख शिख-सौन्दर्य्य की विवेचना में व्यर्थ वितण्डाबादन न कर केवल इतना कह देना ही उचित समझते हैं कि आप अपने मन में किसी एक ऐसी सुन्दरी का अनुमान-कर लीजिये- जिसपर आप का चित्त-संयमी होने पर भी बलात् आकर्षित हो गया हो वा होता हो और आप का चित्त चलायमान होने पर भी उसके निर्द्दोष-कलङ्करहित सौन्दर्य्यपर स्थिर स्थित होकर शान्तिलाभ करता हो।

सौन्दर्य्य का शारीरिक सौन्दर्य्याको-सहस्र गुण दीप्ति प्रदान करने वाला-शील-लज्जा नम्रता-सुकुमारिता-जिस पात्र वा पात्री में है और नम्रतामय मनोहर-सद्गुणाभास जहां स्वयं निज रश्मियों से दीप्त होरहा है-वहाँ केवल कल्पना वा बागाडम्बर की आवश्यकता नहीं है।

सौन्दर्य्यकी दीप्ति को उद्दीप्त करने वाला शील वहां स्वयम् प्रेम बल से प्रभावित होता है फिर केवल कल्पना से क्या है-जो उसका अनुभव किये हैं वह बिना वर्णन किये भी उसके रस को जानते हैं और जो नहीं जानते वह उसे शतधा सहस्रधा वर्णित कल्पित परिवर्द्धित किये जाने पर भी नहीं जान सकते, अनुमानकरसकते वा अनुभव कर सकते हैं।

हां तो, उनदोनों राजकुमारियों की सौन्दर्य्य आभा से कह सकते हैं कि वह द्वादशद्वारी देदीप्यमानहोरही है-शोभायमान हो रही है।। सत्यहै स्थान से पदार्थ की पदार्थ से स्थान की शोभा होती है। इसमें शुष्क तर्ककी आवश्यकता नहीं

है- रेखागणितसाध्य की आवश्यकता नहीं है-समझाने की आवश्यकता है-और यदि कोई आवश्यकता है भी तो केवल स्वयं समझने की।

इसी प्रकार कुछ समय तक वह सरल-सुखप्रदसंगीत उन सुरम्य-सुशील-सुकमारी सुन्दरी राजकुमारियोंद्वारा सम्पादित होकर समाप्त हुआ और उन दोनों राजकुमारियों में से उस न्यून अवस्थावाली नवीनाने दूसरी से कहाः—

'बहिन-माधवी! चलो चलें, थोड़ा बाटिका में घूमें, अबतो गाते २ उकता गये (उसका हाथ पकड़ कर) देखो-कैसा सुहावना समय है। उधर जलयंत्र के पास वाली मालती-लता में देखो सूर्य्य की किरणें पड़ने से नवकलिकायें कैसी उज्जल तथा मनोहर हो रही हैं। जलयन्त्र की धारायें कैसी अच्छी जान पड़ती हैं।'

माधवी ने मुसकुरा और धीरे से हंसकर कहाः-"अच्छा, बहिन मल्लिका चलो-तुम गाते गाते थक गई हो-क्यों है न यही बात-अच्छा चलो (उठकर और लौंडियों की ओर देख कर) अच्छा, हम अभी थोड़ी देर बाटिका में घूमेंगी। यदि माता पूछें तो कहदेना।

यहकह माधवी और मल्लिका उठीं और द्वादशद्वारी से उतर कर बाटिका में इधर उधर पुष्प प्रस्तरित सुगन्धमय समीरका आनन्द लेतीहुई टहलने लगीं।

उन्हें अभी इसी भांति टहलते हुए बहुत बिलम्ब न हुआ था कि एक लौंडीने आकर कहा कि राजकुमारी जयश्री आई हैं—और वही द्वादशद्वारी में हैं।

मल्लिका ने हंसकर कहाः-"तो यहाँ क्यों नहीं चली आईं (हंसकर) जयश्री आई हैं तो क्या हुआ।"

साथही माधवीने कहाः-"जिस समय हम यहाँ आई थीं तब तो कहती थीं कि मैं न चलूंगी।"

इतने ही में किसीने मधुरस्वर में हंसकर पीछे से कहाः-

"नहीं, नहीं बहिन, रुष्ट न होओ, जयश्री भला आप से कहीं रुष्ट हो सकती है क्या कभी यह संभव है। तुमसे रुष्ट होकर जयश्री कहाँ रह सकती है।"

मल्लिका और माधवी ने ज्योंही पीछे फिरकर देखा तो जयश्री खिलखिला कर हंस उठी। साथही ये दोनों भी हंसने लगीं। माधवी ने हंसते २ कहाः—

"बहिन जयश्री, तो फिर यह छन्द क्यों रचा था?"

जयश्री-नहीं, बहिन, सोबात नहीं है।

मल्लिका-सो बात कैसे नहीं है?

जयश्री-मैं वहीं महारानी जी के पास बैठी थी, मेरी इच्छा उस समय इधर आने को न हुई।

माधवी-क्यों?

जयश्री- तुमतो वाटिका ही में रहती हो-तुम और बातें क्या जानों। तुम्हें यह नहीं विदित है कि यवनों की एक बड़ी सेना भारतवर्ष पर आक्रमण करने को चली आरही है।

माधवी-(चौंककर) हैं, तुमने कैसे जाना।

जयश्री-मैं, जब महारानीजी के यहां गई तो पहिले यौंही इधर उधर थोड़े समय तक टहलती रही। उस समय महाराज और महारानी में यही बातें होरही थीं।

मल्लिका-तो तू सब चुपचाप सुनती रही।

जयश्री-हां-

माधवी—बहिन जयश्री-सचमुचही तबतो बड़ी चिन्ता की बात है।

जयश्री--सचमुच ही बात तो ऐसी ही है, परन्तु उनकी बातचीत से जाना जाता है कि कोई चिन्ता विशेष नहीं है।

माधवी--क्यों ?

जयश्री--क्योंकि इधर भी सैन्यबल दृढ़ है।

मल्लिका--तो तू यही सब बातें सुनरही थी और मैंने जो कमला को तुम्हें बुलाने को भेजा था-तो तुमने कहदिया कि मैं तो वाटिका में नहीं जाती-इसका यही कारण था न?

जयश्री--हां, सच पूछो तो मुझे बड़ी चिन्ता उपस्थित थी, मेरा तो जीव जाने कैसा २ होने लगा जिस समय कि मैंने उनकी बातें सुनीं।

माधवी--तब तो बहिन तुमने बहुत ही अच्छा किया क्योंकि हमलोगों के सामने वे कभी कोई ऐसी बात न कहते।

मल्लिका--निस्संदेह।

माधवी--हां-बहिन जयश्री, है तो बात ऐसीही।

जयश्री--ऐसी नहीं तो क्या?-महाराज की बातों से जान पड़ा कि यद्यपि सैन्यबल दृढ़ है तौ भी सचेत रहना चाहिये परन्तु घबराने की कोई बात नहीं।

मल्लिका--बहिन, तब तो निस्सन्देह भय है।

माधवी--(उसे रोक कर) बहिन व्यर्थ भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है।

मल्लिका--निस्सन्देह क्षत्रियों के रहते तक तो भारतवर्ष पर कोई यवन कुदृष्टि नहीं डाल सकता।

जयश्री--बहिन मल्लिका-तू वीर-पुत्री होकर ऐसी कादरता की बातें करती है क्यों ?

मल्लिका--(कुछ लजा कर) नहीं बहिन ऐसा मत कहो-क्षत्रियों की बालिकाओं को ऐसी बातों में भय नहीं है परन्तु

उस बात को सुनने से वैसा विचार मेरे मन में उत्पन्न हुआ था।

माधवी—ऐसे विचार भी हानिकर होते हैं। कभी चित्त को मलीन न करना चाहिये।

जयश्री—मलीन क्यों करना चाहिये। किन्तु घबराने की अपेक्षा धर्मपूर्वक वह सब बातें बिचार कर उससे बचने का प्रयत्न करना उचित है।

इस प्रकार माधवी, मल्लिका और जयश्री में बहुत देर तक इधर उधर की बातें तथा हास्यालाप होता रहा। अनन्तर वे तीनों—धीरे २ घूमती फिरती बाटिका बिहार करती-बात चीत करती-राजप्रसाद की ओर चलीं परन्तु फिर मार्ग में उन्होंने कोई बातचीत उस बिषय पर न की-वरन् उनने उस बात को मनही में दबा रक्खा और ऐसा भाव धारण किया मानो उन्हें कुछ भी वृत्तान्त ज्ञात न था।

द्वितीय परिच्छेद।

(महाराज शिवसिंह।)

पात्रे त्यागी गुणे रागी भोगी परिजनैः सह।
शास्त्रे बोद्धा रणे योद्धा पुरुषः पञ्चलक्षणः॥

मल्लिका, माधवी और जयश्री ये तीनों आपस में बहुत ही प्रेम रखती थीं। किसी प्रकार का अन्तर वा भेद इनमें परस्पर नहीं रहता था। तीनों ही बचपन से एकसाथ बहुधा रहीं लिखीं पढ़ीं तथा साथ खेली थीं।

जयश्री रावेर के राजा शिवसिंह की भानजी थी-जो देवाल के राजा बीरसिंह की पुत्री थी। बीरसिंह को राजा शिवसिंह की बहिन राजकुमारी इन्द्रावती ब्याही गयी थी।

राजकुमारी को जन्मदेने के साथ ही इन्द्रावतीइहलोक परित्याग कर गई और उसके दो वर्ष उपरान्त राजा बीरसिंह की भी एकाएक मृत्यु हो गई और बेचारी जयश्री एकप्रकार से माता पिताहीन अनाथ होगई। तब रावेर के राजा शिवसिंह ने अपनी भानजी जयश्रीको वहां से बुलवा लिया और अपनी पुत्रियें मल्लिका तथा माधवी के साथ लालन पालन किया।

दैवाल का राज्य जो जयश्री के पिता बीरसिंह का था उनके मंत्री गोबिन्दसिंह के अधिकार में सौंप दिया गया परन्तु आठ वर्ष के उपरान्त उनका देहान्त हो गया और पुत्र हरिहरसिंह उनका स्थानापन्न हुआ। हरिहरसिंह की अवस्था इस समय बीस वर्ष से अधिक नहीं है परन्तु हां अधिक हृष्ट पुष्ट-स्थूल होने से वह आट्ठाईस बरस से न्यूनावस्यक जान नहीं पड़ता। इस समय दैथाल राज्य का प्रबन्धक वही था।

जयश्री अपने मामा महाराज शिवसिंह और मामी चन्द्रावती के समीप रही और माधवी व चन्द्रमल्लिका दोनों के साथ पली इसी कारण इनमें ऐसा स्नेह था जैसा कि बहिनों में होना चाहिये।

तीनों को यही जान पड़ता था कि हम एकही माता से उत्पन्न हैं और तीनों में परस्पर प्रीति होने से, महाराज और महारानी परम प्रसन्न और सुखी थे।

महाराज को केवल एक पुत्र बिक्रमसिंह था जिसकी उम्र इस समय १८ वर्ष की थी। बिक्रमसिंह बाल्यावस्था से ही राजकाज और सैनिक बातों में ऐसे अनुकूल थे कि महाराज ने अपने सभासदों से सम्मति लेकर उन्हें राज्य

सिंहासन रूढ़ कर दिया और आप ईश्वराराधन में कालाक्षेप करने लगे ।

राज्य के कार्य से महाराज को वैसे तो कोई सम्बन्ध नहीं था परन्तु कभी २ वे किसी गूढ़ बिषय में-राजपुत्र बिक्रमसिंह को जो अब राजा बिक्रमसिंह हो गये थे-परामर्श देदिया करते थे ।

संक्षेप में—उस समय भारतवर्ष में शान्ति बिराजती थी और उत्तरीय सीमा प्रान्त के अधिकांश भाग पर इनका अधिकार था ।

जयश्री का बिवाह होगया था, वह आलोर के प्रसिद्ध राजा दाहिर के पुत्र जयसिंह के साथ व्याह दी गई थी । जयश्री की अवस्था इस समय लगभग चौबीस बर्ष के थी और उसके दो पुत्र भी होगये थे-जिनमें से बड़े का नाम—सुरेन्द्रसिंह और छोटे का नाम नरेन्द्रसिंह था ।

जयश्री का बिवाह जब वह दस ग्यारह बर्ष की थी तभी करदिया गया था परन्तु तीनों में प्रीति अधिक होने के कारण बहुधा उसे माधवी और चन्द्रमल्लिका अपने घर रावेर में बुला लेतीं और महीनों रखतीं । ठीक इसी प्रकार ये दोनों बहिने भी वहां जातीं और रहतीं ।

यहां एक बात और लिख देने योग्य है जो यह है कि देवाल में हरिहरसिंह जो प्रबन्धक वा मन्त्री नियत किया गया था वह ऊपर से बहुत अच्छा परन्तु अन्तरङ्ग बहुत ही कपटी और दुराचरणी था । उसकी कुदृष्टि जयश्री पर पड़ती थी । बहुधा उसे कठिन २ बिषयों पर राजाज्ञा लेने को-परामर्शलेने को रावेर आना पड़ता था । जब जयश्री का बिवाह भी नहीं हुआ था तब उसे निश्चय था अथवा वह

अपने मन के लड्डु उड़ा रहा था कि मैं जयश्री के पाने के निमित्त महाराज शिवसिंह से प्रार्थना करूंगा । यदि वे सीधी रीति से स्वीकार कर लेंगे तो ठीक है नहीं तो उनसे बिरोध कर बैठना क्या बड़ी बात है । महाराज वृद्ध हैं। राजपुत्र बिक्रमसिंह का वय केवल दस वर्ष का है । मेरे अधिकार में यद्यपि उतनी सेना नहीं हैं जितनी महाराज के तथापि क्या हुआ ।

इसी बीच में एक घटना ऐसी हुई जिससे हरिहरसिंह के सारे मन्तव्यों पर,—माया—महलोंपर पानी फिर गया। उधर सिन्धुपार पठान और बलूचियों ने बड़ा उपद्रव मचाया तब आलोर रावेर, बहमनाबाद, बीरन (वर्तमान हैदराबाद) तथा दैवाल के राजाओं तथा अधिपतियों की सम्मति से एक संयुक्त सेना उनका दमन करने को भेजी गई। उस सेना का प्रधान-नेता प्रसङ्गवश हरिहरसिंह ही चुना गया। हरिहरसिंह इससे बहुत ही प्रसन्न हुआ परन्तु मनही मन उसने अपनी यह प्रसन्नता दबा रखी। प्रसन्नता दबा रखने का कारण यह था कि उसका अभिप्राय प्रकट होने से, उसने बिचारा कि बना बनाया सारा काम चौपट हो जायगा। उसने मन में यह निश्चय किया था कि यदि मैं उन बिपक्षी लुटेरों का दमन करने में समर्थ हुआ तो फिर जयश्री पाने की प्रार्थना करना और सफल होना कुछ बड़ी बात नहीं है और यदि नहीं हुआ तो उसी सेना से इन्हींपर आक्रमण कर देना भी सहज है।

इसी से वह सम्पूर्ण सम्मिलित सेना को साथ ले सीमा प्रान्तपर यथा सम्भव शीघ्रता से जा पहुंचा और तन मन से उन लुटेरों का दमन करने में कटिबद्ध हुआ।

हरिहरसिंह के पिता गोबिन्दसिंह आखेट के बड़े व्यसनी थे। महीने में वह पन्द्रह दिन जङ्गलों में ही बिताया करते। एक दिन बरसात के दिनों में जब कि गोविन्दसिंह अपना आखेट का पड़ाव डाले एक घने जङ्गल में पड़े थे—एक भयानक सिंह ने उस प्रान्त भर को तङ्ग कर डाला था,-अनेकानेक पशु तथा आखेटिये उसके हाथों अपने प्राण खो चुके थे। जिस समय बनरखों (बन रक्षकों) ने गोविन्दसिंह को यह सूचना पहुंचाई वह अपने पुत्र हरिहरसिंह को दैवाल की देख रेख रखने को कहकर अपना आखेटीय दछले उस बन की ओर चल दिये। दिन भर चले जाने के बाद तीसरे पहर उस बन के समीप पहुंचे जहां उस सिंह का रहना सुना गया था। रात्रि में एकाएक जब सब सो गये थे कुछ हलचल सुन पड़ी और यह विदित हुआ कि शेर गोविन्दसिंह को ही ले भागा। बहुत ढूंढ खोज होने पर एक स्थान पर झाड़ी में एक शव पाया गया, जो बहुत ही नुचा खुचा था—जिसके विषय में अनुमान किया गया कि वही गोविन्दसिंह का शव था।

यह समाचार दैवाल भेजा गया। उसके पुत्र हरिहरसिंह ने उसका अन्तिम कर्म किया। उसके स्थान पर महाराज शिवसिंह ने हरिहरसिंह, को राजकुमारी जयश्री के राज्य का प्रबन्धक या दीवान नियत किया।

तब से हरिहरसिंह की वह प्रेममात्रा और भी अधिक और प्रबल हो गई, जिसे वह जयश्री के पाने की आशा से चिरकाल से मन ही मन दबाये था। इस बात की सूचना किसी रीति से महाराज शिवसिंह को मिल गई। दूरदर्शी महाराज शिवसिंह ने यथा सम्भव शीघ्र राजकुमारी

जयश्री का बिवाह-जिसकी बात बीत आलौर के राजा दाहिर के पुत्र कुमार जयसिंह से ठीक हो गई थी-कर देना निश्चय किया। क्योंकि उन्हें हरिहरसिंह की दुष्टता का भली भांति अनुभव हो गया।

इसी अवसर में सीमा प्रान्त पर लुटेरों का उपद्रव बढ़ा। महाराज ने अपने मित्र तथा सम्बन्धी सम्पूर्ण राजाओं से गुप्त रीति से मन्त्रणा कर हरिहरसिंह को उस दल का नेता बनाकर सीमा प्रान्त पर डाकूओं का दमन करने को भेज दिया जो बहुत उपद्रव मचा कर प्रजा को कष्ट दे रहा था। वहां हरिहरसिंह को प्रायः दो वर्ष लगे। सचमुच ही वहां डाकू उन दिनों ऐसे प्रबल हो रहे थे कि हरिहरसिंह अनेकानेक यत्न करने पर भी वह उन्हें पूर्ण रीति से दो वर्ष के समयान्तर में भी दमन न कर सका। हाँ, उसकी चेष्टा से उनका उपद्रव न्यून अवश्य हो गया। समय२ पर वह अपनी स्वामि-भक्ति का परिचय महाराज शिवसिंह के पास पत्र द्वारा लिख भेजा करता था, जिसके उत्तर में महाराज उसका यथोचित आश्वासन कर दिया करते थे।

हरिहरसिंह ने अपना अभिप्राय महाराज शिवसिंह से राजकुमारी जयश्री के पाने के निमित्त प्रकट नहीं किया था क्योंकि उन डाकूओं का दमन कर वह अपने मन में निश्चय किये था कि उक्त बिषय को कहने पर अवश्य ही महाराज से राजकुमारी को पाने की आशा कर सकूंगा।

इधर महाराज ने उचित अवसर विचार शुभ स्थान में, राजकुमारी जयश्री का बिवाह राजकुमार जयसिंह के साथ कर दिया। दोनों ओर से जैसी कि राज्योचित धूम धाम और आनन्द का होना चाहिये था हुआ।

जिस समय हरिहरसिंह लौट कर देवाल को आया, उस समय रानी जयश्री के परम पुत्र सुरेन्द्रसिंह का जन्म हो चुका था। हरिहरसिंह यह देख कर सूख गया। उसकी सम्पूर्ण आशालताओं पर पानी फिर गया। इसी समयान्तर में, उसे महाराज शिवसिंह की ओर से एक आज्ञा-पत्र मिला, जिसमें यह लिखा था—

"श्रीयुत हरिहरसिंह

'यथा योग्य'

तुम को सूचना दी जाती है कि देवाल प्रान्त जिसके प्रबन्धक तुम राजकुमारी जयश्री की ओर से बनाये गये थे—राजकुमार जयसिंह को दहेज में दिया जा चुका है। सो अब जयश्री ही वहां के शासनसत्ताकी अधिकारी है। राजकुमार जयसिंह अपनी ओर से कोई प्रबन्धक नियत किया चाहते थे परन्तु प्राचीनता और इन डाकुओं के दमन में तुमने श्रम किया है जैसा कि एक वेतन पानेवाले राजकर्मचारी को करना चाहिये—तुम्हारे निमित्त उनसे निश्चय कर दिया गया है कि तुम पूर्ववत् अपने पद पर रहोगे परन्तु अब से तुमको राजकुमार जयसिंह से ही सम्पूर्ण कार्यों में परामर्श लेना होगा। मुझ से सम्बन्ध नहीं है। अतः स्वामिभक्तिपूर्वक अपने पद पर रहकर पूर्ववत्-प्रबन्धकता करते रहोगे।

महाराज शिवसिंह"

इस चिट्ठी को महाराज शिवसिंह से पाकर हरिहरसिंह और भी कुढ़ा। उसने विचारा कि यह अच्छा हुआ कि मैं प्रबन्धक रहा। यद्यपि वैसा स्वातन्त्र्य तो नहीं है परन्तु रानी जयश्री के पाने का कोई न कोई प्रयत्न अवश्य मैं कर सकूंगा। अस्तु-मुझे चुपचाप यह सब सहना चाहिये।

प्रिय पाठक वृन्दों ! हरिहरसिंह के इस अनर्गत-अनुचित प्रेम का क्या परिणाम होता है वह कैसी स्वामि-भक्ति दिखाता है और क्या करता है इसकी सूचना रानी जयश्री को कौन दे ? राजकुमार जयसिंह यह सब बातें क्या जानें ?

तृतीय परिच्छेद ।

हरहरसिंह और जयश्री ।

परिक्षीणः कश्चित्स्पृहयति यवानां प्रसृतये
सपश्चात्सम्पूर्णः कलयतिधरित्रीं-तृणसमाम् ।
अतश्चानैकान्त्याद्गुरु लघुतयार्थेषु धनिना-
मावस्था वस्तूनि प्रथयति च सङ्कोच्ययति च ॥

हरिहरसिंह ने कुछ न कहा परन्तु कपट की अग्नि उसके हृदय में धधकने लगी। स्वामी की पुत्री के पाने की अधम लालसा से अब भी उसका हृदय शून्य नहीं हुआ। राजकुमारी जयश्री अब राजकुमारी जयश्री नहीं है किन्तु रानी जयश्री के नाम से सर्वत्र पुकारी जाती है। रानी जयश्री बहुतही बुद्धि-मती पतिव्रता और गंभीर थी। उसको हरिहर के मन्तव्यों का अभास क्रमशः होने लगा।

हरिहरसिंह के देवाल लौटने के उपरान्त राजकुमार जयसिंह आलौर से देवाल को राज्य-कार्य देखने के निमित्त आये। साथ में उनके साले विक्रमसिंह भी थे। रानी जयश्री अपने पति को बहुत चाहती थी। उनकी सेवा में वह किसी प्रकार की त्रुटि न करती। सैकड़ों सेविका-परिचारिकाओं के रहते परभी वह स्वयं टहल करती और भोजन बनाकर खिलाती थी।

जयश्री के स्वभाव से छोटे बड़े, सभी बहुत प्रसन्न रहते थे अपने से बड़ी स्त्रियों से वह सदा बहुतही नम्र और छोटी वय वालियों पर कृपावान् रहती थी। छोटी२ बालिकाओंको वह बहुतसी बातें शिक्षाप्रद अवकाश मिलने पर सिखाया करती और बहुत से श्लोक उनको कंठस्थ करादेती थी। इस समय भी वह अपने हाथ में रामायण की पोथी लिये हरिहरसिंह की बड़ी लड़की सुशीला को कुछ पढ़ा रही है।

जयश्री ने सुशीला से कहा—"सुशीला, तू पढ़ने तो लगी है परन्तु अभी अर्थ में अटकती है।"

सुशीला—हां, आप जब से यहां पधारी हैं (हाथ जोड़ कर) तब से बहुत कुछ पढ़ना सीख लिया है। पहिले एक पण्डित पढ़ाते थे पर—

जयश्री—(सुशीला की बात काट कर) अच्छा, तो पढ़ाकर, देख तो यह कैसी अच्छी शिक्षा है। पढ़ तो किसका सम्वाद है।

जयश्री के यह कहने पर सुशीला ने पोथी ली और थोड़ी देर उसे मन में पढ़ और फिर जयश्री की ओर देखकर बोली "कि पढ़ती तो हूं परन्तु कहीं २ अर्थ मेरी समझ में नहीं आता।"

जयश्री—अच्छा जहां तेरी समझ में न आवे, वहां मुझ से कहियो मैं समझा दूंगी।

राजकुमार जयसिंह तथा रानी जयश्री, कई महीनों तक वहां ठहरे। राजा विक्रमसिंह भी उनके साथ थे।

हरिहरसिंह की बेटी सुशीला—नित्य रानी जयश्री के पास आकर तथा अन्यान्य पुस्तकों को पढ़ लेती और फिर दूसरे दिन आकर सुनाया करती थी। सुशीला का वय

इस समय पांच वर्ष का है और उसकी छोटी बहिन इन्दिरा अभी चार वर्ष की है। ये दोनों बहिनें और जयश्री के दोनों पुत्र सुरेन्द्र और नरेन्द्र साथ २ पढ़ते और खेलते रहते हैं।

सचमुचही सुशीला सुशीला थी। उसकी बहिन इन्दिरानी उमी के समान थी। विचित्रता यही थी कि स्त्री रहने पर भी-सन्तान रहने पर भी, हरिहरसिंह को जयश्री का ध्यान दिन रात रहता था। दुष्टात्मा, पापी हरिहरसिंह अपने मन से लाख यत्न करने पर भी वह दुष्ट विचार दूर न कर सका। कभी २ छिपकर किसी न किसी प्रकार से वह जयश्री को देखही लिया करता। इससे उसकी वह अधम पापवृत्ति बहुतही प्रबल हो गई।

एक दिन उसने अवकाश पा, रानी जयश्री से एकान्त में आकर कहा। पहिले तो रानी जयश्री को उसके इस अनुचित आचरण पर बहुत क्रोध आया परन्तु उसने अपने मन का भाव मनही में दबाकर तीव्रस्वरमे कहा:—

"हरिहरसिंह यह क्या है? तुम मेरे पास इस समय क्यों आये हो? क्या यह तुम्हारी काररवाई निन्दा सूचित नहीं करती? जाओ, इसी समय यहां से चले जाओ।"

हरिहरसिंह ने, ज्योंही पास से रानी जयश्री की श्री देखी वह मन से मुग्ध हो गया और हाथ जोड़ कर बोला:-

"चाहे तुम मुझे दुष्ट कहो वा अधार्मिक परन्तु मेरे हृदय पर तुम्हारी मूर्ति बहुत वर्षों से अङ्कित हो रही है। जिसे मैंने वहां से दूर करने का बहुत प्रयत्न किया परन्तु सब व्यर्थ हुआ। जो तुम यह प्रश्न करो कि मैं यहाँ क्यों आया हूं सो इसका उत्तर तुम्हारा हृदयभी स्वयं भली भाँति दे सकेगा। कहने की आवश्यकता नहीं है। मैंने तुम्हारे

पाने को क्या २ कष्ट नहीं किये। बन २ डाकुओं से लड़ता फिरा अपने प्राण सङ्कट में डाले। फिर भी तुम्हारा यह रुष्ट व्यवहार। कहीं यह न सोंचना कि मैं बातचीत में 'तून' करता हूं। प्रेम के पथ में राजा और प्रजा समान हैं। यदि अब भी तुम्हारी कृपा कटाक्ष मुझ पर न होगी तो...... ....(रुककर) क्या जैसी तुम्हारी मनोहर मूर्त्ति है, सौन्दर्य्य है, ठीक उसी के विपरीत निष्ठुरता तुम में कूट २ कर भरी है। क्या कहूं। यदि हो सकता तो मैं तुम्हें अपना हृदयपट दिखाता। मेरी दशा पर दया करो। देखो मैं अपने प्राणोंपर खेल कर यहाँ आया हूं। यदि राजकुमार-

जयश्री ने कुछ भी चाञ्चल्य प्रकाश न किया।

हरिहरसिंह की वह कामान्ध-उक्ति सुनने के पश्चात उसने शान्तिपूर्व्वक कहना प्रारम्भ किया:—

"हरिहरसिंह—तू हमारे राज्य का प्रधान नियत किया जाकर हमारे प्रति यह व्यवहार करता है! जो तूने डाकुओं का दमन किया तो क्या नई बात की। क्या तूने वर्षों तक राज्य का वेतन नहीं भोगा। तेरे रोम२ में हमारा लवण है। फिर यह कापुरुषता तू क्यों दिखाता है? यह बात समझ में नहीं आती है। तेरी स्त्री पर मुझे दया आती है नहीं तो इसी समय तुझे तेरे इस उद्दण्डता और अनाधिकार प्रवेश करने का दण्ड दिलाती। अरे पापात्मा तुझे लज्जा नहीं आती कि अपनी माता समान स्वामिनी के प्रति तू किन शब्दों का प्रयोग कर रहा है। अरे मूर्ख क्या सज्जनों के यही गुण हैं। इसी चरित्र के भरोसे तूने राज्य का प्रबन्ध किया होगा। क्षत्रियों का धर्म्म यह नहीं है। वे पराई स्त्री को कभी दृष्टि उठा कर देखना तो दूर, मन में भी कभी चिन्तवन नहीं करते।

तुझे यह नहीं विदित है क्या ?

उदर्कं भूतामि-च्छद्भिः सद्भिः खलु-न्दृश्यते ।
चतुर्थी चन्द्रलेखेव परस्त्री भाव पट्टिका ॥

तू क्या बालक है जो तुझे समझाया जाय । जो तू यह प्रेम-प्रेम कर रहा है-तो सच पूछा जाय तो तुझे यह मालूम भी नहीं कि प्रेम क्या होता है। मातृ पितृ प्रेम, गुरु प्रेम, स्वामिप्रेम, देश प्रेम, उन प्रेमों को न जानकर तू परपत्निप्रेम में प्राबौल्य दिखलाता है । अरे पतित ! परपत्निप्रेम, कदापि प्रेम नहीं है, वह प्रेत है और वह तुझ जैसे हृदय-चक्षु-अन्ध मनुष्यों को पाप मार्ग पर प्रवृत्त कर पुण्य से पृथक तथा पाप में प्रवृत्त करता है । तू जो कहता है कि मुझ पर दया करो तो सचमुच ही तू दया करने के योग्य है क्योंकि पाप प्रवृत्ति पाश से तू बंधा है और तुझे लोक परलोक कुछ दृष्टि नहीं पड़ता ।

तेरी स्त्री यदि तेरी यह बातें सुने तो तुझे क्या कहे । तुझे यह ध्यान नहीं है कि पाप में रत मनुष्य कभी सुख नहीं पा सका ।

जैसे पुरुषों को परनारी पर दृष्टिपात नहीं करना चाहिये ठीक वैसी ही कठिन नियमावली स्त्रियों के लिये भी—पर—पतिदर्शन, स्पर्श आदि के लिये प्राचीन ऋषि और आचार्योंने निर्म्माण की है ।

सुन, पुण्य पथ से पृथक पतिव्रता कभी नहीं होती ! सचमुचही उनका हृदय उस समय पाषाण क्या वज्र से भी अधिक कठोर हो जाता है । प्राण पर्य्यन्त देकर भी वे अपने सतीत्व की रक्षा करना परम धर्म्म समझती हैं । पतिव्रता का धर्म्म यही है । इसमें उसकी कुछ प्रशंसा नहीं है । अस्तु जाओ

हरिहरसिंह भविष्य में कभी ऐसे व्यर्थ पाप पथ विचार अपने मन में भूल से न लाना नहीं तो दण्ड पाओगे इस बेर मैं तुम्हें तुम्हारी अज्ञानता के कारण क्षमा करती हूं।"

हरिहरसिंह को रानी जयश्री की शांन्त परन्तु तीव्र और सच्ची बातों ने सुखा दिया। उसका मुंह भय से श्वेत होगया। कुछ समय तक वह पाषानमूर्त्ति बनकर वहीं स्थिर होगया। इसी भांति वह कुछ समय तक निश्चत खड़ा रहने के पश्चात् कुछ चैतन्य हुआ। उसकी ओर देखने से ज्ञान पड़ता था कि बहुत से भयावने विचारों ने उसके मन पर अधिकार कर लिया है और वह पाप-हृदयकामान्ध, हरिहर-सिंह लाख लाख यत्न करने पर भी अपने मनपर अधिकार नहीं कर सकता।

अन्ततः कुछ समय में उसको पुनः अपने हृदय पर अधिकार प्राप्त हुआ। उसने सम्हल कर कुछ रूक्ष स्वर से कहा,–

"रानी जयश्री, मैंने आप की यह लम्बी चौड़ी ज्ञानमयी विवेचना सुनी और उसका प्रभाव भी मेरे हृदय पर जैसा पड़ा, उसको मैंही जानता हूं अब मैं फिर पूछता हूं कि आप का मेरे विषय में क्या ध्यान है?"

"तुम यदि सभ्यता के बाहिर न गये तो, तुम्हारा कल्याण होगा। भविष्य में कभी परनारि पर दृष्टि न डालो। सुनो गुरुपत्नी, भ्रातृपत्नी, स्वामिपत्नी, आश्रित की स्त्री इत्यादि ये सम्पूर्ण माताही हैं। इसके अतिरिक्त क्षत्रियों को सर्व्वदा और सर्व्वत्र पर पत्नि परित्याग कहा है। उसी पथ का तुम अवलम्बन करो। क्षत्रिओं की प्रणाली का प्रेम सीखो, देश-भक्ति करो यही सच्चा प्रेम है। क्या तुम नहीं जानते कि यवन भारतवर्ष की ओर आक्रमण करनेको बढ़े चढ़े आरहे हैं

और तुमको अपने देश के, स्वजाति के, धर्म्म के, स्वामि के प्रेम के स्थान हृदय में परपति प्रेम घुसा है । जाओ स्वस्त्री सेही रति रखो इसी में मङ्गल है ।" रानी जयश्री ने शांति पूर्वक कहा ।

अभी रानी जयश्री ने यह बात कठिनता से समाप्त की होगी कि किसी ने उच्च स्वर से कहा "निस्सन्देह रानी जयश्री ठीक कहती हैं ।"

यह स्वर हरिहरसिंह को परिचित सा जान पड़ा परन्तु वह कहनेवाले का निश्चय नहीं कर सका साथही किसी के आजाने से और उसको यह वृत्तान्त किसी पर खुलगया, विचार होने से भयभीत हो वह उसी समय वहां से चला गया ।

रानी जयश्री मनहीमन कुछ बिचारती हुई पुनः यथा-शांत हो स्थित होगई । कुछही देर वह वहां इस भांति बैठी थी कि इतने में एक सेविका ने आकर सूचना दी कि महाराज आते हैं, और वह उनकी प्रतीक्षा करने लगी ।

चतुर्थ परिच्छेद ।

"मन्तव्य"

राजाश्चयस्तस्करताश्च स्यमार्थवणं चाविसमुद्रयाम् ।
एतानिसिद्धयन्ति महाकलानि विपर्यये प्राणहराणियश्च ॥

जिस समय का वृत्तान्त लिखा जा रहा है उस समय 'दाहिर' नामक प्रसिद्ध क्षत्रिय राजा भारतवर्ष के उत्तर सीमा प्रान्त में राज्य कर रहा था । इतिहासकार लिखते हैं कि उसके शासन में बहुत से धनधान्य पूर्ण तथा प्रचुर मनुष्य संख्यापूर्ण नगर थे जिनमें कि प्रधान आलोर जो उसका

राज्यधानी था तथा बहमनाबाद नैरूं और मुलतान इत्यादि थे और दैवाल भी अब दाहिर केही अधिकार में था।

दैवाल का आजकल कहीं चिन्ह भी नहीं है परन्तु यह बहुत कुछ अनुमान करने से आभासित होता है कि जहां करांची की स्थिति है वा उसके समीप ही कहीं उक्त नगर था। आलोर के प्रतापी दाहिर राजाने अरब लोगों के कुछ जहाज़ लूट लिये और इस कारण हज्जाजने, अपने एक समीप सम्बन्धी मुहम्मदक़ासिम नामक युवा तथा योग्य योद्धाके अधिपतित्व में एक दृढ़ सेना, भारतवर्ष पर चढ़ाई कर दाहिर को दण्ड देने के अभिप्राय से भेजी। मुहम्मद-क़ासिम फ़ारिसदेश और बलूचिस्थान से होता हुआ सिंध के सामने सदल बल आ पहुंचा।

इससे केवल प्रतापी दाहिरही को नहीं किन्तु सम्पूर्ण उस प्रान्त के अन्यान्य राजाओं को भी बड़ी चिन्ता उपस्थित हुई। उन लोगोंने इस भय से परित्राण पाने के हेतु परस्पर सेना एकत्र की। निस्सन्देह उस समय पञ्जाब प्रान्त के अधिकांश राजा दाहिर के बशवर्ती थे परन्तु तौभी उनमें के तथा अ-ड़ौसी पड़ौसी के राजाओं में हार्दिकईर्षा विद्यमान थी। इस समय यह जान कर कि इस प्रकार आपत्ति से केवल दाहि-रकी ही क्षय नहीं है किन्तु सम्पूर्ण पञ्जाब का नाश प्रत्य-क्षही है उन सम्पूर्ण राजाओं ने दाहिर के साथ युद्ध में योग देना उचित समझा। भारतवर्ष को परस्पर के फूट और अकारण बिग्रह ही ने मिटाया। इतिहास इन बातों का साक्षी है।

यवन सेनाध्यक्ष युवा मुहम्मदक़ासिम इस समय सिन्ध देश के सीमा प्रान्त पर आ पहुंचा है और पञ्जाब प्रान्त

के दाहिर के बशवर्त्ती राजाओं की सम्पूर्ण सैनाएं भली भांति सज्जित होकर अधिकांश तो उस ओर भेजी जा चुकी हैं और शेष क्रमशः यथा सम्भव शीघ्रतापूर्ब्बक भेजी जारही हैं।

देवाल, बह्मनाबाद, मुलतान नैरूं* इत्यादि का अधिकांशदल इस समय आलौर के आसपास इकत्र है राजालोग तथा अन्यान्य सेनापति तथा अधिपति अपनी २ सेनाओं को यथा योग्य स्थानों में स्थितकरने की चिन्ता में व्यस्त हैं। किसी का भी अपने काम की धुन के आगे और किसी बात की ओर लक्ष्य नहीं है। सचमुचही उस विशाल बलवती यवन सेना का सामना करने को सभी बहुत चिन्तित प्रयत्रबान् तथा बद्धपरिकर थे।

थोड़ी २ सेनायें दुर्गों की रक्षाके निमित्त अधिपतियों के आधीन कर छोड़ दीगई थी और शेष सम्पूर्ण युद्ध भूमि में उपस्थित थीं।

जिधर दृष्टि जाती थी उधर चारों ओर, बीर राजपूत बीर वेष धारण किये शस्त्र सज्जित सम्मूह घूम रहे थे। अश्वारोहीवृन्द यत्र तत्र अपना पड़ाव पत्तिसे पृथक किये थे। धनुर्धर अपने २ धनुनाथ लिये अपने लक्ष्य उस यवन युद्ध में प्रमाणित करने का विचार कर रहे थे।

स्थान २ पर प्रसिद्ध २ शूर बीरों का समारोह था। बड़े २ सैनापति एकान्त में स्थिर होकर युद्ध-सम्बन्धी भिन्न २ बिषयों पर परस्पर सम्मति कर रहे थे।

सम्पूर्ण राजा लोग अपने २ शिबिरों से बाहिर आ एक बिस्तीर्ण बितान में यथा योग्य स्थानपर बैठे थे और बात चीत का प्रवाह इस समय सैना के सुप्रबंध और सुव्य-

* वर्तमान हैदराबाद के स्थान पर उनदिनों नैरूं बसता था।

वस्था पर चल रहा था।

सेनाओं में खाने पीने का प्रबन्ध ठीक रखने के निमित्त स्थान २ पर हाटें लगादी गई थीं जिनसे वणिकों को अपनी वस्तुएं बेच कर भरपूर लाभ उठाने के सिवाय किसी की जय पराजय से कुछ भी प्रयोजन न था।

सायंकाल के उपरान्त तुरुही बजाई गई और सम्पूर्ण सैनिक अपनी २ सैनाओं में लौट गये। वहां पहुंचने पर उनको अपने अधिपतियों द्वारा यह आज्ञादी गयी कि उनमें के कुछ निर्द्दिष्ट अश्वारोही तथा सैनिक चारों ओर घूम कर सावधानी पूर्व्वक चौकसी रखें।

सम्पूर्ण नित्यनैमित्तिक कर्म और भोजन इत्यादि से निवृत्त होने पर चुने २ सेनानायकों की एक समिति उसी विस्तीर्ण-बितान में एकत्र की गई। यथा योग्य आसन और सत्कार किये जाने के उपरान्त पान और इत्र बीच सभा में रखागया इसके उपरान्त स्वयं महाराज दाहिरने उठकर यों कहना प्रारम्भ किया,—

"प्रियबन्धुओं, इस समय हम सभी एकही रोग में ग्रस्त हैं और सबही को उस रोग के आने से पहिलेही उसको द-मन करने की यथासाध्य औषधि करनी चाहिये। क्षत्रियों का धर्म्म प्रजा रक्षण और युद्धही है, अन्य कुछ नहीं। युद्ध क्षेत्रही क्षत्रियों का सबसे श्रेष्ठतीर्थ है। बीर पुरुषों, अपने पूर्व्वजोंके-ऋषि मुनि के निर्द्दिष्ट नियमों का पालन करो। बीरों युद्ध क्षेत्रही-धर्म्म की रक्षा के हेतु सर्व्व श्रेष्ठतीर्थ है। क्या तुम्हें यह ध्यान तनिक भी लज्जास्पद और पीड़ादायक बोध नहीं होता कि बीरमाता बीरपत्नी-बीरभगिनी कुलरम-णियें—बलात् दुराचारी यवनों की अङ्क-शायिनी बनायी

जावें और तुम बैठे देखा करो। वीरवर क्षत्रियो, यवनों ने भारतवर्ष पर–भारतवर्ष के धर्म्म धन पर तथा मर्य्यादा पर पदाघात करने–पददलित करने के निमित्तही यह आक्रमण किया है। अतः उनसे अपने धर्म्म और मर्य्यादा की रक्षा करनाही तुम्हारा प्रधान और प्रथम कर्त्तव्य है। क्या आपलोग इसपर सहमत हैं? और यदि सहमत न हों, स्त्रियोंको यवनाङ्कशायिनी बनाना हो, धर्म्म को तिलाञ्जलि देना हो—धनका क्षय करना हो तो और बात है। बस इससे अधिक कुछ और कहने की आवश्यकता नहीं यदि युद्ध स्वीकार है तो सत्यपूर्व्वक शपथ करें।

इस मर्मवेधी कहने को सुनकर एक २ राजा और अधिपति ने उठ कर अपनी असिको स्पर्शकर उच्च स्वर से कहा कि "हम अपने धर्म्म देश और मर्य्यादा के निमित्त युद्धक्षेत्र से कदापि न हटेंगे।"

पश्चात् महाराज ने, उठकर कहा,——

वीरवर, एक गूढ़ समस्या और उपस्थित है और वह यह है कि कोई व्यक्ति यहां से जाकर यवन सेना का भेद गुप्तरीति पर लावे, जिससे अनेक बातों का सुभीता होसकता है। बिना इसके हमलोगों को बहुतसी असुविधाएं होसकती हैं। इस में साहस की आवश्यकता है--मैं आशा करता हूं कि इन क्षत्रियवर्यों में से कोई न कोई अवश्य इस श्रयको, कर्त्तव्य को वा धर्म्म को स्वीकार कर अपने वीरोचित कर्त्तव्य पालन करने का परिचय देगा और इस काम का बीड़ा उठा लेगा। समस्या गूढ़ है इसका गुप्त रहना भी उतनाही आवश्यकीय है जितना कि इसका पूरा करना।"

बहुत समय तक महाराजके बाद चुपचापी छागई। बहुत

से इधर उधर झांकने लगे। इस रङ्ग को देखकर महाराज ने अपने पुत्र राजा जयसिंह की ओर दृष्टि फेराही था कि एक व्यक्ति भीड़ चीर कर बीच में आया और वह बीड़ा उठाकर उसने सरपेच में खोंस लिया और वह महाराज को जुहार करने के बाद अपने स्थान की ओर चला।

इसी क्षण सम्पूर्ण वितान हर्षनाद से गूंज गया और धन्य हरिहरसिंह! धन्य हरिहरसिंह!! धन्य हरिहरसिंह!!! यह ध्वनि गूंज उठी।

सभी हरिहरसिंह को प्रशंसा की दृष्टि से देखकर मुस्कुराते हुये परस्पर एक दूसरे का मुंह देखने लगे।

इत्र पान किये जाने के पश्चात् सभा बिसर्जन की गई। महाराज का सङ्केत पाकर, जयसिंह और हरिहरसिंह वहाँ ही रह गये।

एकान्त हो जाने पर महाराज ने हरिहरसिंह से कहा—

"हरिहरसिंह तुम्हारे साहस से हमको सन्तोष हुआ। कहो उस यवनदल में जाकर भेद पाने की तुमने क्या युक्ति बिचारी है। तनिक मुझे भी तो सुनाओ। जहांतक हो सकेगा मैं तुम्हें उस विषय में परामर्श दूंगा।"

हरिहरसिंह—(दोनों हाथ जोड़कर) श्रीमान् की इस असाधारण अनुकम्पा से मैं अनुगृहीत हूं। यदि अपने धर्म्म की रक्षा में प्राण भी चला जाय तो बहुत उत्तम है। मैं गुप्तरीति से यवन वेष धारण कर यवन शिविर में जाकर वहाँ का सम्पूर्ण वृत्तान्त ले आऊंगा।

महाराज—हाँ—यह तो ठीक हुआ परन्तु क्या तुमने अकेलेही जाना निश्चय किया है?

हरिहरसिंह—जी नहीं, दोएक रक्षक भी वेष परिवर्त्तित

किये हुए रहेंगे।

महाराज—देखो, जहांतक सावधानी की जाय उत्तम है (जयसिंह की ओर देखकर) क्यों तुमक्या सम्मति देतेहो?

जयसिंह-आपके समक्ष मुझे इस विषय पर तर्क वितर्क करना उचित जान नहीं पड़ता।

हरिहरसिंह—यवन सेना अभी बहुत दूर है, हमलोग उसकी सूचना आपको यथावत् और यथा सम्भव शीघ्र पहुंचावेंगे।

इसके उपरान्त महाराज दाहिर राजाजयसिंह और हरिहरसिंह में बहुत समय तक धीरे २ न जाने क्या बातें होती रहीं, जिसको हम नहीं सुन सके। इसके उपरान्त हरिहर-सिंह महाराज तथा राजा जयसिंह को जुहार कर अपनी सेना की ओर जाता दिखाई दिया।

प्रिय पाठकवृन्द, जान पड़ता है कि दुष्टात्मा हरिहरसिंह का कलुषित हृदय, रानीजयश्री के उपदेशरूप बारि से निर्मल होगया और उसपर वह नीति अङ्कित होगई थी जो उसे समझाई गई थी।

पंचम परिच्छेद।

'अपरिचित रक्षक'

आपदां कथितः पन्थ्य इन्द्रियाणाम संयमः।
ताज्जयः सम्पदां मार्गो येनेष्टं तेन गम्यताम्॥

यवन सेना द्वारा घेरे जाने पर भी हिन्दुओं ने युद्ध में असाधारण वीरता दिखाई। यवनों ने अपने दलके भिन्न २ भाग करके महाराज दाहिर के अधीनस्थ दुर्गों पर

पृथक २ अधिपतियों के नेतृत्व में भेजे। ऐसी सूचना पाकर महाराज दाहिर को उस संघाति दल का अधिकांश भाग उन दुर्गों की रक्षा के निमित्त भेज देना पड़ा क्योंकि दुर्ग संरक्षकों की अल्पसेना उस प्रबल यवन सेना का सामना करने में किसी प्रकार भी समर्थ नहीं हो सकती थी। इसी कारण, हरिहरसिंह भी अपनी अधीनस्थ सेना ले देवाल की ओर प्रस्थानित हुआ और उचित समय में सदलबल वह अपने दुर्ग के समीप जा पहुंचा।

वहां पहुंचने से पहिले ही उसे यह वृत्तान्त विदित हो गया कि यवन दल देवाल के समीप ही है जिसके उत्तर में उसने समाचार लाने वाले से मुसकुराकर कहा कि "कोई विशेष चिन्ता की बात नहीं है।"

दूसरे दिन प्रातःकाल के पहिलेही जब कि सुबह की सफ़ेदी भी आकाश मंडल में भलीभांति न फैलने पाई थी कि यवन सीढ़ी लगाकर दुर्ग में एकाएक घुस गये और बात की बात में नगर पर अधिकार कर लिया। प्रहरीगण जो ऊंघ रहे थे अपनी तन्द्रा से चैतन्य भी न होने पाये। सम्पूर्ण नगर में इससे हाहाकार मच गया। यवन घरों में घुस २ कर लूट पाट मचाने लगे। स्त्रियों को पकड़ने और उनकी प्रतिष्ठा लेने के यत्न करने में सन्नद्ध हुए। सैकड़ों स्त्रियों ने सतीत्व रक्षा के निमित्त अपने प्राण दे दिये,-देवालय गिरादिये गये। सहस्त्रों मनुष्य, बालक वृद्ध तथा स्त्रियें लौंडी गुलाम बनाये जाने को-या बेचे जाने को पकड़ २ कर यवन दल में भेज दिये गये।

सायङ्काल होने से पूर्व ही नगर में यवनों की पताका फहराने लगी और चारों ओर निस्तब्धतासी छाई जान

पड़ने लगी। यत्र तत्र कहीं २ नगर में दो चार मनुष्य इस निर्दयता और अत्याचार का भयानक दृश्य देखने को, आहत अवस्थामें पड़े रह गये थे। उनके प्राण अबतब कर रहे थे परन्तु उनने अपने धर्म्म, मर्य्यादा तथा वीरत्व निर्वाह न करने की अपेक्षा प्राण देना कठिन न समझा।

चारों ओर सहस्त्रों शव पड़े हुए थे, जिनमें कोई २ अब भी जीवित थे और जलकी चिल्लाहट मचा रहे थे परन्तु उनकी सुधि लेने वाला वहां कौन कहा जा सकता था। ईश्वरही उनका रक्षक समझिये।

इसी प्रकार रात्रि आधी से अधिक बीत गई। उस समय एक घोड़े पर बैठा हुआ एक सवार, जिसके पीछे पांच सवार हथियार बांधे, हुए थे, जिससे यह जाना जाता था कि अवश्यही यह उन सबों से बड़ा पद वा दर्जा रखता है दुर्ग से बाहर हो वह यवन-दल की ओर चला।

उसके चले जाने के पश्चात् एक मनुष्य जो अपने शरीर को एक काली चादर से छिपाये न जाने कब से उस अंधेरे में फाटक के बाहर कहीं छिपा था भीतर घुसा। फाटक पर कोई भी संरक्षक या प्रहरी न था। लूटे हुए दुर्ग की रक्षा करने की चिन्ता न यवनो को थी और न हरिहरसिंह को। हमारे पाठकवृन्द सोचते होंगे कि हरिहरसिंह क्या हुआ। हरिहरसिंह का पता बहुत ढूंढने पर किसी को न मिला कि वह कहां गया। युद्ध के समय भी उसे किसी ने न देखा।

बिना सेनापति के सैन्य क्या कर सकती है, इसका अनुमान सहजही में किया जा सकता है। उस नगर की जैसी दुर्दशा हुई उसका वर्णन उस समय के लिखे हुए इतिहासों में सविस्तार पाया जाता है।

जिस समय यवन सेनापति मुहम्मद् ने हरिहरसिंह का घर ढूंढा तो वहां कोई न था। अतः वहां का जो कुछ द्रव्य हाथ लगा लूटने के पश्चात् वह अपनी सैन्य में पीछा लौट गया।

अब हम उस व्यक्ति का वृत्तान्त लिखना उचित समझते हैं जो उन अश्वारोहियों के दुर्ग से बाहिर हो जाने पर अपने को काली चादर से छिपाये भीतर घुसा था। उसने अपनी चादर से प्रकाश करने के पदार्थ निकाले, जिनमें एक तेल की शीशी और चकमक था। वहीं से कपड़े लेकर एक टूटे हुए भाले के सिरे पर बाँध शीशी से तेल ले, उसने मशाल तैयार की और चकमक से आग झाड़, प्रकाश किया। वह बड़े ध्यान से उन शवों के ढेरों में प्रकाश की सहायता से ध्यान पूर्वक देखता हुआ इधर उधर फिरने लगा। जान पड़ता था कि मानों वह किसी की लाश ढूंढ़ रहा है। इसी प्रकार अपनी धुन में लगे हुए उसे डेढ़ प्रहर से अधिक व्यतीत हो गया। कभी २ थक कर वह कहीं बैठ जाता और थोड़े समयतक अपनी थकावट मिटा लेने के पश्चात् फिर उसी प्रकार अपने कार्य में लग जाता।

एकाएक वह ठहरा और ध्यान देकर सुनने लगा। कहीं से धीरे २ कराहने का शब्द उसके कर्ण-कुहर में प्रविष्ट हुआ उसी शब्द की ओर वह शीघ्रता से बढ़ा। वहां पहुंचने पर, शवों के ढेर में से उसे पुनः उसी भांति कराहने का शब्द सुन पड़ा। कुछ शव इधर उधर हटाने के बाद उसने देखा कि एक प्रायः-अर्द्ध-जीवित व्यक्ति के मुख से वह कराहने का शब्द निकल रहा है। उसने मशाल का प्रकाश आगे किया। शवके मुंह पर प्रकाश पड़ने से वह पहिचानने

में समर्थ हो सका और वह अपने श्रम के साफल्य की सीमा पर पहुंच गया। उस अर्द्ध–जीवित व्यक्ति को उसने शवों के ढेर से बाहर निकाला। उसकी अवस्था बहुतही बुरी थी, जान पड़ता था कि शीघ्रही वह इहलोक परित्याग करने वाला है।

यह देख कर भी वह ढूंढनेवाला व्यक्ति हताश नहीं हुआ और उसने अपने पास से एक शीशी निकाली जिसमें कोई औषधि थी और उसमें से कुछ अंश उस अर्द्धजीवित व्यक्ति के मुंह में किसी प्रकार कष्ट से उसने डाल दिया।

शीतल वायु के लगने से और उस विचित्र औषधि के बल से उस आहत व्यक्ति की देह में बल का कुछ सञ्चार हुआ और उसने टूटे फूटे शब्दों में कहा—'आह—मैं—कहां–हूं क्या यवन—अ-अ-अ-भी-प-रा-आ-आ-जित-नहीं-हु-उ-उ-ए-क्या क्षत्रियों-की-ई-ई—

इससे अधिक वह कुछ और न कह सका और तुरन्तही मुर्च्छित हो गया।

उस व्यक्ति ने, पुनः वह औषधि उसके मुंह में डाली और उसे एक गठरी में बांध, कष्ट पूर्व्वक, एक हाथ में मशाल लिये पीठ पर गट्ठर लादे, द्रुत गति से दुर्ग के बाहर निकल जाने की इच्छा से चल दिया।

मार्ग में उसे कोई भी न मिला। अंधेरी रात्रि सनसन कर रही थी। हां—सियारों के लड़ने का शब्द उसके कानों तक अवश्य पहुंचता था परन्तु वह भी कभी कभी। झिलमिलाते हुए तारागण, इस दृश्य पर मानों शोक से विह्वल हो तेजहीन हो गये थे। उस व्यक्ति ने जिसे 'अपरिचित' सम्बोधन कर हम लिखना उचित समझते हैं आकाश की ओर

देखा तो, विदित हुआ कि रात्रि प्रहर भर से भी न्यून शेष है, उसने लम्बी सांस लेकर धीरे से कहा—

"हरिहरसिंह— तेरी कापुरुषता का परिचय अभी तक किसी को नहीं था, यह बात न थी परन्तु तौ भी तू अपने को बड़े सच्चरित्रों में लगाता था। महाराज दाहिर समझते होंगे कि हरिहरसिंह बड़ा बीर स्वामिभक्त और योग्य है। परन्तु यह तेरीही योग्यता का परिचय है कि सहस्त्र २ नरनारी बध हुए—बन्दी किये गये—धर्म्महीन हुए। अरे दुष्ट तू समझता होगा कि ईश्वर यह सब कुछ नहीं देखता है!"

अपरिचित अपने हार्द्दिक उद्वेग की तरङ्ग में अपने आप यह कहता हुआ दुर्ग से बाहिर हो गया। जहाँ कुछ दूर पहुंचने के बाद उसने गट्ठर उतारी और एक छोटी सी तुरही निकाल कर ऊंचे स्वर से बजाई जिसका शब्द सुनसान जंगल में दूरतक फैल गया।

उसके कुछ समय ही पश्चात् दो मनुष्य जो अपरिचितही की भांति अपने को काले बस्त्रों से ढके थे, आये और बोलेः— "आप को गये बहुत बिलम्ब हुआ था इससे नाना-बिध चिन्तामय बिचार हमारे चित्त में उत्पन्न हो रहे थे हम कभी यहां न रुकते और दुर्ग में पहुंचते परन्तु आप की आज्ञा थी कि कदापि यहां से न हिलना जबतक कि मैं न आऊं।"

"निसन्देह तुमने बड़ीही बुद्धिमानी का काम किया। अब प्रातःकाल होने में बिलम्ब नहीं है। तुम शीघ्रही इस (गट्ठर को दिखाकर) को लेकर आनन्दमठकी ओर चले जाओ। प्रातःकाल होने पर यवनों द्वारा अनेक बिघ्न उप-स्थित किये जाने की शङ्का है। वहां पहुंच कर इसकी

भली भांति सावधानी रखना। यह अशक्त बहुत है परन्तु बचने की आशा है। अच्छा जाओ।"

उन दोनोंमें से एक ने पूछा कि आप अब कहां जायंगे और——

अपरिचित ने कड़क कर कहा:—"इन सब बातों के कहने और सुनने का न यह समय है और न प्रयोजन है। यह समय योहीं व्यर्थ नष्ट नहीं किया जाना चाहिये। जैसा मैंने कहा है वैसा करो।"

फिर उनने एक शब्द भी न कहा और गट्ठर को लाद दोनों एक ओर को चल दिये।

अपरिचित वहां से उठा और पास की एक झाड़ी की ओर गया जहां एक घोड़ा बंधा, बागडोर के सहारे से चर रहा था। उसे खोल कर उसने शीघ्रता पूर्वक, सवार हो, उत्तर ओर का मार्ग लिया और अपने दिलमें कहा कि सबसे पहिले मुझे आलोर पहुंच महाराज दाहिर को इस उपस्थित आपत्ति की सूचना पहुंचाना परम आवश्यकीय है। पापात्मा हरिहरसिंह की दुष्टता और षड़यन्त्र का परिचय उन्हें नहीं तो किसी प्रकार न होसकेगा और भारी अनर्थ हो जायगा। क्या करूं बड़ी आपत्ति है।

प्रिय पाठकवृन्द आप निसन्देह यह जानने के निमित्त व्याकुल होंगे कि महाराज दाहिर की ओर से यवन दल का भेद लेने जाकर हरिहरसिंह ने क्या किया। अब वह कहां है और किस धुन में है? तथा यह अपरिचित अद्भुत व्यक्ति कौन है जो ऐसे कठिन समय में अपने बहुमूल्य प्राणों की भी चिन्ता न कर आलोर पहुंच कर महाराज दाहिर को सचेत करने को उद्विग्न है?

इस रहस्य का भेद अभी हम भी नहीं जानते, प्रिय पाठक वृन्द, तनिक आप धैर्य्य धरें तो सम्पूर्ण बातें क्रमशः स्वयं प्रगट हो जावेंगी।

षष्टपरिच्छेद।

मुहम्मद बिन क़ासिम।

नौव दुर्जन जिह्वाग्र प्रतिकूल विसर्पिणी।
पापतारणायैव दारुणा केन निर्मिता॥

इस समय हमको संक्षेपतः उस युद्ध का वृतान्त सविस्तार लिखना उचित नहीं जान पड़ता है। इतिहासों में उनकी भयङ्करता का वर्णन भली भांति लिखा गया है।

वलीद के समय कि आक्रमणों से सम्पूर्ण उत्तर भारतवर्ष काँप उठा। वलीद का दल गंगा के पार देशों पर्य्यन्त जा पहुंचा था और उसके तीन वर्ष उपरान्त उसके सेनापति कासिम के पुत्र मुहम्मद ने भारतवर्ष पर दूसरी बेर आक्रमण किया। वह बड़ी भारी सेना लेकर सिन्धु देश में आपहुंचा और दाहिर से जो उस समय गुजरात का अधिपति था बहुत लड़ाइयें लड़ा। अंततः दाहिर की पराजय हुई और उसी युद्ध में वह वीरोचित गति को प्राप्त हुआ। सम्पूर्ण क्षत्रिय वीराङ्गनाएं अपने २ पति के साथ, चिता में बैठकर भस्म हो गईं परन्तु अपना पवित्र पतिव्रतधर्म्म परित्याग न किया और न पर पुरुषाङ्कगामिनी कहलाईं। उन प्राचीन गौरव की रक्षा करने वाली वीराङ्गनाओं का चित्र चरित्र इतिहास के पृष्ठों पर आज तक अङ्कित है और रहेगा।

रावेरका दुर्ग भी यवनों के अधिकार में चला गया है।

तीस सहस्त्र मनुष्य बन्दी बनाये गये। उनमें के छः सहस्त्र राजा के सिर के साथ खलीफ़ा वलीद के पास बग़दाद भेज दिये गये और बहुत से बेंच डाले गये।

दैवाल में मंदिर ढहाये गये। मसजिदें बनाई गईं। तीन दिन पर्य्यन्त कतलेआम रहा। बन्दी एकत्रित कियेगये, लूट इकट्ठी होती रही। नैरूं में मूर्त्ति तोड़ी गयी। अस-कलंद में जो शस्त्र बाँधे देखे गये, उनका बध किया गया। बहू बेटी बालक वृद्ध सभी गुलाम बनाये गये।

मुहम्मद बिन कासिम ने जिस समय बरहननाबाद अपने अधिकार में किया। वहाँ के सोलह सहस्त्र मनुष्य मारे गये, बीस सहस्त्र यवनों के द्वारा बन्दी बनाये गये। संक्षेपतः इनके सविस्तार वर्णन की आवश्यकता नहीं है क्योंकि दाहिर के युद्ध में मारे जाने से पहिले ही उनका पुत्र जयसिंह युद्ध ही में से रणप्राङ्गन परित्याग कर कहीं भाग गए। जिस से और भी उपहास हुआ तथा रही सही सेना भी क्षय होगई।

उस समय का वृतान्त पढ़ने से कलेजा काँपता है। देश की जैसी दुर्दशा उस समय हुई वैसी कभी नहीं हुई। परन्तु प्रियपाठकवृन्द इस दुर्दशा का प्रधान कौन था? यह भी आपने बिचारा?

यवन सेनापति धुरन्धर युवक मुहम्मद बिन कासिम को एक फर्मान खलीफा के पास से आया है जिसे वे पढ़ कर अपने मुसाहिबों को सुना रहे हैं। उस में यह लिखा है:—

"प्यारे सिपहसालार मुहम्मद बिन कासिम।

तुम्हारा हाल तुम्हारे ख़त से मालूम कर हम बहुत ही खुश हैं। तुम्हारे लिये खिलअत और ख़िताब भेजा जाता है और लौंड़ी गुलामों के बारे में यह हुक्म दिया जाता है,—

"काफ़िरों को अमान हर्गिज न देना चाहिये । सबको हलाक करना चाहिये। सिर्फ उनको जीता रखो जो बड़े दर्जे के हों। तुमने जो लौंडी गुलाम भेजे थे । कुछ बेंच दिये गये और कुछ अमीरों में तकसीम कर दिये गये । राजा की लड़की तुमने जो भेजी थी वह अपने अज़ीज भतीजे को अता कर दी गई ।

तुम्हारे तारीफ़ की कुछ ज़रूरत नहीं है यकीन है कि तुम हत्तलइमकान अपनी ख़ैरख्वाही दिखाओगे । फ़कत्"

खतके नीचे ख़लीफ़ा के नाम की मुहर लगी थी और वह चिट्ठी एक बड़े ज़र्रीन खलीते में बन्द थी जिसके जोड़ों पर भी मुहर की गई थी ।

मुहम्मद बिन कासिम ने अपनी तरफ़ से और भी नमक मिर्च लगाकर इस ख़लीते का मतलब अपने मुसाहिबों और मातहतों को समझाने की कोशिश की ।

जो २ लौंडी गुलाम बिक सके या जिनने रुपया देकर अपने सम्बन्धियों को मोल ले लिया, । वे छोड़ दिये गये । शेष बग़दाद को भेज दिये गये ।

पाठकगण ! उस समय की भयानक अवस्था और शान्तिमय बृटिशराज्य का अन्तर आप अनुमान कर सकते हैं, जिनके शासन में राजा तथा रङ्क,-बाघ बकरी बैर छोड़ एक घाट पानी पीते हैं ।

सप्तम परिच्छेद ।
'यवन शासनप्रणाली'

खलानां धनुषां चापि सद्वंशजनुषामपि ।
गुणलाभो भवेदाशु परच्छेदकारकः ॥ शुभाषित ।

प्रियपाठक वृन्द ! आप यह विचारते होंगे कि देश उस समय किस अवस्था में था, प्रजा किस दशामें थी ? शासन-कर्त्ताओं की क्या शैली थी ? प्रजा और राजा में कैसा प्रेम था ?

आप अनुमान करते होंगे कि जैसा हम लोग सुख और चैन के साथ शाँति पूर्वक, ब्रिटिश साम्राज्य में बसते हैं, वैसाही तब भी रहा होगा। नहीं, नहीं, ऐसा नहीं है उस समय की आपत्तिमय समय का वृत्तान्त यदि आप इतिहासों के पत्र उलट कर देखेंगे तो रोम खड़े हो जायेंगे, सिर घूमने लगेगा। उन अत्याचारों का वृत्तान्त जो यवनो ने भारतवर्ष और भारतवर्षीय पुरुषों के प्रति व्यवहृत किये हैं, पढ़ कर आप का चित्त घबरा उठेगा।

बहुतेरे उसी समय का स्मरण कर अब भी कांप उठते हैं। ब्रिटिश राज्य के प्रभामय शासन में पक्षपात और प्रजा भी उतना विधान सम्पूर्णतः नहीं है। और डाकू, चोर तथा ठग इत्यादि का कालेशमात्र भी भय नहीं है। क्या यवन और ब्रिटिश शासन में, कांच और मार्ग का अन्तर नहीं है।

आजकल प्रायः इतिहास की रुचि कुछ भी नहीं है। न इतिहास की पुस्तकों का यथोचित प्रचार है। दो चार ग्रंन्थ यदि हैं भी तो कुछ तो बहुत छोटे हैं और कुछ ऐसे बड़े कि जिन्हें सर्व्वसाधारण मोल भी नहीं ले सकते। जो इतिहास देखते हैं वह उस समय की और शान्ति पूर्ण ब्रिटिश साम्राज्य के यथार्थ प्रकृति और परिवर्त्तन का परिचय रखते हैं।

उस समय की, प्रजा- राजनीति, शासन प्रणाली तथा अन्यान्य बातों का अत्यन्त सूक्ष्म रूप से चित्र खींच कर

दिखाने की हम इस परिच्छेद में चेष्टा करेंगे। पाठकवृन्द जो इस विषय से अपरिचित हैं, उस समय की विवेचना प्राप्त कर सकेंगे और जो परिचित हैं उनसे क्षमा प्रार्थना कर, हम आशा करते हैं कि वे इसे एक बेर पुनः पाठ करने में विशेष बाधा न समझेंगे अथवा बिना पढ़े ही इस परिच्छेद् के आगे भी पढ़ सकने में उन्हें कोई बाधा नहीं है। उस समय का संक्षिप्त वृत्तान्त यह है—

सम्पूर्ण सिन्धु में यवन शासन हो गया।

पूर्णतया यवनों की पताका उस प्रान्त में फहराने लगी।

सम्पूर्ण यवन शासन का विभाग भारतवर्ष में तीन प्रकार से विभक्त किया जाता है—

प्रथम वह जो लुटेरों की भांति भारतवर्ष पर चढ़ आये और "जिराद्" अर्थात् धार्म्मिक युद्ध के मिससे परन्तु वास्तव में लूट के धन के निमित्त, लौंडी और गुलाम के लोभ से यहां रहे। यदि यहां रहे और दो चार पुश्त तक सिंहासन पर बैठे या सम्पूर्णकाल लड़ते ही रहे। कासिम के पुत्र मुहम्मद से बाबर और हुमायूं पर्य्यन्त इसी श्रेणी में हैं।

दूसरे वह जिनको देश के प्रबन्ध का अवकाश मिला अकबर से औरंगजेब तक इसी विभाग के हैं।

शेष तीसरे वह जिनके समय में यवनों की शक्ति घटने लगी और क्रमशः उनका राज्य क्षय हो गया।

सचमुच ही इस देश में 'परदा' तभी से प्रचलित हुआ जब से मुसलमान आये। इनकी लूट पकड़ के भय से इनकी देखा देखी भारतवर्षीय हिन्दुओं ने अपनी स्त्रियों को परदे में रखने की प्रथा प्रचलित की।

जहां जहाँ इन यवनों का पदार्पण हुआ यही चित्र देखने

में आया। इनके शासन में कोई देश भी उन्नति के सोपान पर नहीं चढ़ा। युरूप और अमरिकावासियों ने, चित्र बनाना और गायन (संगीत विद्या) की उत्तम कलाएं जान कर नवीन २ गुणों की खोज और मनुष्य की स्वतंत्रता सर्व्वो-परिश्रेष्ठ निर्द्दिष्ट की।

योरप तथा अमरिकावालों के सिद्धान्त के ठीक विप-रीत चित्र विद्या और संगीत शास्त्र, अपने धर्म्म वा मत के विरुद्ध समझा और अपनी किताब में लिखी हुई बातों के अतिरिक्त किसी नवीन कला की खोज करना अत्यन्त हीन और स्वतंत्रता के स्थान में लौंडी गुलाम बनाकर बेचना, यही सांसारिक वैभवों में सर्व्वश्रेष्ठ बिभूति कल्पना की।

कहीं लिखा जा चुका है कि यवन शासन वृत्तातों के सैकड़ों इतिहास वर्त्तमान हैं जिन से बहुत सी काम की बातें विदित होती हैं, परन्तु यह न समझना चाहिये कि इनमें इतिहा-सोचित सम्पूर्ण विषयों और गुणों का समावेश है। यवन इतिहास लेखक अधिकांश ग्रन्थकारों ने इस आशय से कि उनसे पूर्व्व इतिहासकारों की सम्पूर्ण ऐतिहासिक पुस्तकें व्यर्थ हो जायं अपने रचित इतिहास ग्रन्थों में सबका सारांश संकलित किया। इस कारण, उनकी पुस्तकों में, बहुधा कोई नवीन विषय, इनसे पहिले ऐतिहासिकों की अपेक्षा नहीं

---

* स्वयं तैमूर ने इस बात का उल्लेख किया है कि मेरा 'अभिप्राय भारतवर्ष पर आक्रमण करने तथा इतना श्रम उठाने से दो भांति का था। पहिला इसलाम, के शत्रु 'काफिरों' से लड़ना और धार्म्मिक (दीन की) बड़ाई से परलोक (अटि-कनत) में बखशिश का उमेदवार होना साथही दूसरे दुनियां के मुसल्मानों की फ़ौज काफ़िरों का माल लूटे और फ़ायदा उठावे। मुसल्मानों को लूट का माल ऐसा हलाल है जैसे मां का दूध।

प्राप्त किया जा सकता । जो विषय एक पुस्तक में है वही दूसरी में भी किसी न किसी रूपान्तर में पाया जाता है।

बहुतेरे यवन ऐतिहासिकों ने जिस बादशाह अथवा उसके पूर्वजों का इतिहास लिखा तो पारितोषिक के प्रबल लोभ से अथवा प्राणनाश के प्रचण्ड भय से उनके दोषों को बात के आवरन से आच्छादित कर, इतनी मिथ्या प्रशंसा लिखी कि उनकी सच बात भी विश्वास करने योग्य न रही।

और भी एक बात यह स्मरण रखने योग्य है कि इन सम्पूर्ण इतिहासकारों ने यह निश्चय समझ लिया था कि इतिहास केवल बादशाहों के पढ़ने का ही ग्रन्थ है, प्रजा वा सर्वसाधारण का नहीं। इसके अतिरिक्त यह भी उन्होंने निश्चय समझ लिया था कि ईश्वर ने सारा संसार और उसका वैभव बादशाहों ही के सुख भोग के निमित्त रचा है।

वास्तव ही में बादशाह के अतिरिक्त और था कौन ? प्रजा हिन्दू जिन्हें बादशाह आदमी की गणना में भी नहीं समझते थे। केवल वे लूटे जाने और गुलाम बनाने के लिये उत्पन्न किये गये थे।

अमीर खुसरो सा ऐतिहासिक भी अपनी पुस्तक में हिन्दुओं को व्यकवर्ण और काक प्रकृति लिख गया है। अमीर खुसरो का भी इसमें कुछ दोष बोध नहीं होता क्योंकि उस समय के हिन्दू ग्रन्थकार भी अपने देशवासी हिन्दुओं को इन्हीं तथा अन्याय ऐसे ही विशेषणों, उपनामों और सम्बोधनों से विशिष्ट, उपनामित और सम्बोधित किया करते थे। 'काफ़िर' विशेष 'हिन्दुओं का' पर्याय था।

इन इतिहासों से प्रबन्ध तथा प्रजा का वृत्तान्त कुछ भी

नहीं जाना जाता। यह भी कोई नहीं कह सकता कि उनके अधिकृत प्रान्तों की सीमा कहां थी।

माननीय इलियट साहिब अपनी ऐतिहासिक विवेचना में लिखते हैं कि हिन्दू इतिहासकार हिन्दुओं को 'काफ़िर' सम्बोधन करते हैं। मानों उन पर उनका सर्वतोभाव निश्चय है। जब हिन्दू मारे जाते हैं तो वह लिखते हैं 'दाख़िल फ़िन्नार व स्सक़र्व' हुए और जब कोई मुसलमानों में मारा जाता है तो लिखते हैं 'शहादत का शर्बत' पिया 'निसल, इसलाम' 'मुहर्रम-उल्-हराम' 'कुरान शरीफ़' यह तो उनके नित्य के मुहाविरे हैं। वे बिना 'बिसमिल्लाह' के कुछ काम ही नहीं करते। पुस्तकों की भूमिका और प्रारम्भ में "हम्द" और "नात" भी परम प्रयोजनीय जानते हैं।

जिन ओहदों का नाम मात्र लिखा गया है उनके आधीन क्या अधिकार था यह प्रकट नहीं। दीवानी फ़ौजदारी दोनों ही प्रजा सम्बन्धी न्याय क़ाज़ी के हाथ में थे। क़ाज़ी का क़ानून और आदिन मुसलमानों की शरा (धर्म्म शास्त्र सम्मति) थी।

मुद्दई और मुद्दालेअह हिन्दू हो वा मुसलमान, 'वक्तव्य' शराके अनुसार लगाया जाता था। (१) जिससे भारतवर्ष में एक नया सामाजिक नियम बना।

(१) ऐतिहासिक विद्वान अटकल ही नहीं किन्तु अधिकांश यह विश्वास करते हैं कि 'पंचायत' और 'जातिच्युति' ये दोनों प्रणाली तभी से चलीं। लेन देन, भाग विभाग इत्यादि बातों में जब हिन्दुओं को क़ाज़ी और उनके न्याय से कुछ लाभकारी व सन्तोषप्रद व्यवस्था की आशा न रही तो सम्पूर्ण गूढ़ विषयों को अपनी ही 'जाति समुदाय' में उन्होंने न्यायित किया जाना निश्चित किया। जिनने

काज़ियों का यह वृत्तान्त था कि पूर्णतया सम्पूर्ण प्रजा और राज सम्बन्धी कार्यों के एक मात्र हर्त्ता कर्त्ता वे ही थे।

प्रिय पाठकवृन्द! इस भांति हम आपको उस समय की शासन प्रणाली का सूक्ष्मगत सूक्ष्म चित्र, खींचकर उन सामाजिक व्यवस्थाओं से परिचित कराते हैं, जिनका जानना अत्यन्त आवश्यकीय तथा प्रयोजनीय है।

तारीखुस्सुबुकतिगीन में महमूद के बेटे मसऊद, ताजुरामआसीर में कुतुबुद्दीन एबक, तवारीख़ फ़रिश्ता में इख़्तियारुद्दीन और मुइजुद्दीन बहराम शाह, और अमीर खुसरो की तारीख़ अलाई में जलालुद्दीन फ़ीरोज़ ख़िलजी की कोमल प्रकृति और उसी के द्वारा भिलसे की लूट और वहां की अति प्राचीन पीतल की मूर्तियों को अपने किले के दर्वाजे पर यवनों से पद दलित कराया जाना, अबदुल्लाह वस्साफ के तज्किरुल-अमसार में अलाउद्दीन ख़िलजी का वृत्तान्त, मासिक्कल अमसार में स्वयं शहाबुद्दीन का लिखा वृत्तान्त, कुतूबात फीरोजशाही में फीरोज़शाह का वृत्तान्त, और शहनवाज के द्वारा उल्लेखित और भी विवेचनाएं, यवन बादशाहों के दुराचरणों विलासिकता और अन्याय का भली भांति वर्णन करती हैं। यह उन्हीं के मतावलम्बी मुसलमान का ऐतिहासिक वृत्तान्त है, जिसमें कलेजा कांप उठने वाले अत्यन्त घृणित सैकड़ों उदाहरण इन अत्याचारियों के अत्याचार के

उक्त नियम उल्लङ्घन किया वही जातिच्युत किया गया। जाति वाले 'जातिच्युत' के अतिरिक्त और क्या दण्ड दे सकने के योग्य थे। सम्पूर्ण यवन शासन में एक अकबर ही ने एक पण्डित इस निमित्त रख दिया था परन्तु यवनों से वह भी कलंकित हुआ।

पाये जाते हैं। इनके अतिरिक्त और भी सैकड़ों छोटे बड़े ग्रन्थों में इनका सूक्ष्म वा स्थूल चित्र अवश्य कुछ न कुछ पाया ही जाता है।

न अब यवन शासन है और न वह आत्याचार। है तो केवल उनका स्मरण।

अष्टम परिच्छेद।

'मुहम्मद बिन कासिम और हरिहरसिंह'

दुर्जनः स्वस्वभावेन पर कार्यं विनश्यति।
नोदर तृप्तिमा याति मूषको वस्त्र भक्षकः॥

यवन शिविर में, हमारे पूर्व परिचित हरिहरसिंह और सेनापति मुहम्मद बैठे हैं और उनमें यों बातचीत हो रही है।

सेनापति—देखिये यह ख़लीफ़ा का फ़र्मान आया है।

हरि०—आपने देखा ही है, उसमें ख़लीफ़ा साहिब ने क्या हुक्म दिया है।

सेनापति—आप क्या अभी तक नहीं जानते ?

हरि०—जी नहीं।

सेना०—तो क्या सुनना चाहते हैं—

हरि०—(मुसकुराकर) हाँ, हाँ, क्यों नहीं।

सेना०—शायद आप को उसके सुनने से कुछ उदासी हो क्योंकि उसमें दो एक बातें ऐसी ही हैं कि जिनसे—

हरि०—(सेनापति की बात बीच ही से काट कर) खैर, कुछ भी हो, मैं उसे सुनना चाहता हूं। वह क्या बातें हैं जिनसे मैं उदास होऊंगा। ऐसी कोई बात यानी मैंने आपकी ख़िदमत बजाने में कोताही नहीं की है जो आप को नाराज़ करे।

सेना०— (हंसकर) शायद ऐसाही हो।

हरि०—(चौंक कर, परन्तु ऊपर से शांति बनाये रख कर) जिस मिहनत से मैंने आप की ताबेदारी की है, शायद ही और किसी ने वैसी की होगी। देखिये इस वक्त सारा सिन्ध आप के ताबे में है और कोई भी आप का सामना करने वाला, जहां तक अटकल लगाया जाय, नहीं है और किसी तरह का-

सेना०—-यह सब आप अपनी समझ में ठीक समझते होंगे, परन्तु हम लोगों का यह ख्याल नहीं रहता और ख़ास कर मुहिमों पर। बेशक सिन्ध आप की नवाजिस से हमारे अख़्तियार में आ गया है और लौंडी गुलाम भी इफ़रात से मिल गये हैं। शुक्र है खुदाका कि लूट भी हम लोगों के भर पूर हाथ लगी है मगर फिर भी एक बड़ा अँटकाव देख पड़ता है।

हरि०—वह क्या ?

सेनापति—(बहुत हंस कर) आप भी बरसों तक राज काज में रहे हैं, राज काज क्या राजा ही रह चुके हैं, फिर यह बात सुन कर मुझे हद से ज्यादा ताज्जुब करने का मौक़ा मिलता है कि उस अटकाव का हाल आप को मालूम न हो। ख़ैर हमारी बातचीत का सिलसिला हमें फिलहाल उस तरफ़ झुकने नहीं देता, किसी वक्त फुरसत में उसका ज़िक्र करेंगे।

हरि०—आप की पहेली की तरह झंझट में डालने वाली बातों से मुझे भी उतनाही ताज्जुब हो रहा है जितना कि आप को मेरी बातों से।

सेना०—शायद, यह भी आप अटकल ही लगा रहे हैं।

हरि०—जी नहीं, मैं यह नहीं कहना चाहता कि अपनी तारीफ़ करके अपने मुंह से मियाँ मिट्ठू बनूं, क्योंकि जो ईमानदारी और वफ़ादारी मैंने आपके साथ दिखाई है उसका हाल आप अच्छी तरह से जानते हैं। अपनी जान आफ़त में डाल कर मैंने यह सब किया। अपने मुल्क वालों का भी कुछ ध्यान न किया। अपने सारे ऐशोआराम को ठौंकर मार दी,-सब बातों से मुंह मोड़ लिया,-बाल बच्चों का भी हाल नहीं जानता कि वह कहां और किस दशा में हैं।

सेना०—बेशक। बेशक। हम आप की ईमानदारी और वफ़ादारी के लिये बहुत ही खुश हैं और परवरदिगार का शुक्र करते हैं कि आप जैसा ईमानदार और वफ़ादार सर्दार हमें मिला। साथ ही इसके यह भी हमें खूब याद है कि ऐसे शख्स का किस तरह से याद करना चाहिये, किस तरह से उसके साथ किये हुए वायदों को पूरा करना चाहिये और उसकी ताज़ीम हमें किस दर्जे तक करनी लाजिम है क्योंकि वैसा न करने से बड़ा भारी नुक़सान हमाराही है न कि आपका। हरिहरसिंह आप जैसे आदमी के मुंह से ऐसी बातें कभी न निकलनी चाहियें क्योंकि हम को आप का ख्याल सब से ज्यादा है, जिसके बारे में अभी कहना बिलकुल फ़िज़ूल और नामुनासिब है। आप खूब ख्याल रखियेगा कि हम आप को उतनाही खुश करेंगे जितना कि आपने किया है और साथ ही यह बात भी है कि आप अपने दिल से और किसी क़िस्म के ख्याल, जो आये हों—बिलकुल निकाल दें। आपको नाराज़ न होना चाहिये।

हरिहरसिंह—दो बाते हैं जिनका जानना मुझे बहुत ही ज़रूरी है। पहिली तो यह है कि आप ने जो मुझसे

वायदा किया था कि आलौर को हमारे अधिकार में,—ख़लीफा के अधिकार में करा देने पर तुम्हों को उन सब देशों का अधिपति करा देंगे जो आलौर के अधिकार में पहिले से चले आते हैं और लूट के माल से आधा तुम को मिलेगा। दूसरी बात यह है कि आलौर को बिजय हुए बहुत दिन बीत गये। आप के लश्कर के साथ ही मुझे रहना पड़ता है सो अन्य वृतान्त मुझे कुछ मालूम ही नहीं। इन सब से अधिक जयश्री को मैं चाहता हूं, जिसके पाने के लिये मैं आप से मिल गया और आपको महाराज दाहिर के आलौर तथा अन्यान्य दुर्गों के भेद से परिचित करा दिया। वास्तव में, मैं इस ओर गुप्त रीति पर भेद लेने को भेजा गया था परन्तु ठीक उसके विपरीत, मैंने जयश्री की ही लालसा से, आपको सम्पूर्ण भेद ही नहीं दिये किन्तु अधिकांश उन हिन्दू सैनिकों को जो लोभवश वशीभूत किये जा सके थे बहका दिया जिससे आक्रमण होने के पहिले ही वे लोग भाग गये।

सेनापति—आप खातिरजमा रखें, जयश्री बहुत ही हिफ़ाज़त में है। मगर बड़े अफ़सोस की बात है कि भूल से, गड़बड़ में मेरे मातहतों ने उसे और लौंडी गुलामों के साथ बग़दाद भेज दिया। वहाँ वह बहुत अच्छी तरह से है। उसके लिये मैं आपकी तरफ़ से लिखा पढ़ी करूंगा। हत्तल-इमकान आप के लिये मैं कोई बात आपकी हमखूबः के दिलवाने में बाकी न रखूंगा।

हरिहरसिंह पर मानों बज्रपात हो गया। उसका सिर चकराने लगा, जब उसको यह वृत्तान्त विदित हुआ कि जयश्री—उसकी बहुत काल से इष्ट की भांति हृदयपराङ्कित जयश्री यवनों के चङ्गुल में फंस गई है और उसका पाना

एक प्रकार से कठिन ही है। इस समय वह कुछ भी नहीं कर सकता था। उसने अपने को बहुत संम्हाला और लड़खड़ाते हुए स्वर में कहा–

"जनाब" मुझ से यह सब बातें आपने पहिले ही क्यों न कह दीं। आप तो यही कहते रहे कि दूसरे सैन्य में उसे हम छोड़ आये हैं, वह साथ हिफाजत के है उसे किसी तरह की तकलीफ नहीं है। दो लौंडियाँ उसकी ख़िदमत में हैं। खाना एक ब्राह्मणी बना देती है। हां पर पहरे का कड़ा इन्तिज़ाम है। सो तो मैंने ही आप से कहा था कि उस पर इन्तिज़ाम रखा जावे नहीं तो–

सेना०—मुझे भी यह बात सुलेमान की चिट्ठी से आज मालूम हुई। जिस लश्कर में सुलेमान था वह बहुत पीछे रह गया था, यह तो आप जानते ही है कि देवाल जाते वक्त वह गुमराह हो गया था। उसके साथ सभी लौंड़ी गुलाम थे। तब से उसका पता ही न था। यह मुझे एतबार था कि वह मेरा ईमानदार और वफ़ादार मुलाज़िम है इससे मैंने आप की दिलजमई के वास्ते वह सब बातें कह दी थीं।

"अब आप को यह सब कैसे मालूम हुआ" हरिहरसिंह ने धीरे से पूछा "खैर जयश्री अच्छी तरह तो है"

सेनापति—हां, कह तो चुका कि वह अच्छी तरह है। सुलैमान के पास ख़लीफ़ा का फ़रमान पहुंचा और वह मेरे पास भेजा गया जिसके लिये मैंने आप को बुलाकर इस वक्त तकलीफ दी।

हरिहरसिंह—हाँ, चाहे जैसा आप समझें।

अभी यह बातचीत होही रही थी कि दो यवन सैनिक एक हिन्दू को पकड़े और उसे पीटते हुये लाये। वह बहुत

ही बूढ़ा था। उसके चेहरे पर झुर्रियां पड़ी हुई थीं। उन दोनों ने आकर सलाम करने के बाद कहा—

"हुजूर यह रात के वक्त पड़ाव के इधर उधर घूमता हुआ पकड़ा गया है, न जाने किस मनशा से यह वहाँ घूम रहा था कि मैं वहां जा निकला और इससे दो चार बातें पूछीं जिसका जवाब यह ठीक २ न दे सका।"

सेनापति—(बुड्ढे से) तू कौन है।

बुड्ढा—मैं आलोर का रहने वाला हूं।

सेनापति—नामाकूल अरे तू क्या पेशा करता है।

बुड्ढा—मैं दाहिर महाराज के पास रहता था।

हरिहरसिंह—(बुड्ढे को ध्यान से देखकर) तो तुम मुझे जानते हो। मैं कई बेर वहाँ आता जाता था मगर तुम को मैंने वहां नहीं देखा।

बुड्ढा—तुमने नहीं देखा तो क्या हुआ।

सेनापति ने जान लिया कि बुड्ढा सीधी तरह राह पर नहीं आवेगा इससे उसने उन दोनों आदमियों को, जो उसे पकड़कर लाये थे, उसे कैद में रखने को कहा और हरिहरसिंह से कहा कि 'अच्छा अब फिर मुलाक़ात होगी आप किसी तरह का और ख़्याल न करें।

मुहम्मद बिन कासिम अपने खेमे और हरिहरसिंह अपने डेरे की ओर मनही मन कुछ सोंचते चले गये।

इसके बाद सेनापति ने अपने खेमें में एक विश्वस्त नौकर को जिसका नाम अज़ीज था बुलाकर कहा कि देखो इसकी हिफ़ाज़त का भार तुम पर है।

'बहुत बेहतर' कह कर अज़ीज़ वहाँ से कहीं चला गया।

नवम परिच्छेद।

'मुहम्मदबिन कासिम का परिणाम'

क्षणेरुष्टस्क्षणे तुष्टः रुष्टस्तुष्टः क्षणे क्षणे।
अव्यवस्थित चित्तानां प्रसादोऽपि भयङ्कर॥

अष्टम परिच्छेद में जो घटना लिखी जाचुकी है वह संवत् ७७० की है। हमको अपनी वर्णन शैलीक्रम ठीक करने के निमित्त पुनः उस समय लौटना पड़ता है जब कि आलौर को मुहम्मदबिन कासिम ने विजय किया था।

यह कहना अनुचित नहीं है कि जयश्री यवनों के बन्धन में पड़ कर बगदाद भेजी जा चुकी है।

उसके कुछ ही समय के पश्चात् माधवी और चन्द्रमल्लिका भी मुहम्मद बिन कासिम यवन सेनापति द्वारा ख़लीफ़ा की ख़िदमत में हिन्दुस्तान के तोहफे के तौर भेजी जा चुकी हैं इस उपन्यास के आदि में जो दृश्य दिखाया गया है उसके ठीक विपरीत आज हम उन दोनों बहिनों को यवन शिविर में, बगदाद की ओर प्रवास करने वाले दल के खेमें में बैठा हुआ देखते हैं।

खेमा औरों से अच्छा है—जो लौंडी गुलाम बनाये गये हैं उनसे बहुत अच्छा है परन्तु बन्धन और मर्य्यादाहीन—धर्म्महीन बन्धन! यद्यपि इन दोनों के साथ खाने पीने के लिये हिन्दू साथ हैं तथापि जो जो २ चिन्तायें उनको घेरे हैं उनकी पुनरोक्ति इस स्थान पर आवश्यकीय नहीं।

दोनों बहिन—माधवी और चन्द्रमल्लिका इस समय अकेली ही हैं, अर्थात् उनके खेमे में और कोई नहीं है। माधवी ने मल्लिका से कहा—

'बहिन मल्लिका' हमारी स्थिति में जैसा कुछ परिवर्त्य था हुआ सो तो प्रत्यक्ष ही दीख रहा है। अतः अब यहां से परित्राण पाना तो परम दुष्कर है। हां, यह कहो कि अब क्या भारत के पतिव्रताओं की वह पवित्र प्राचीन कीर्त्ति बलात् नष्ट की जावेगी—

"हा मधुसूदन! क्या हम को कलुषित होकर जीवन, निन्दनीय जीवन धारण करना होगा।

मल्लिका ने आंखों में आँसू भर कर कहा, 'बहिन' यह सब हमारे खोटे भाग्यों का परिणाम है। हरिहरसिंह की ही दुष्टता से यह सब हुआ। बहिन जयश्री के ही अनुचित प्रेम में फंस उसने ऐसा किया। भैया ने भी, जयसिंह भैया ने भी कायरता प्रकट कर समरभूमि परित्याग कर क्षत्रियों की कीर्त्ति को कलङ्कित किया। हरिहरसिंह की स्त्री 'कुमुद' की न जाने क्या दशा हुई। उसकी दोनों बालिकाएं—

इतना कह कर मल्लिका उच्च स्वर से रोने लगी।

माधवी ने उसके आंसू पोँछ कर कहा, 'बहिन अब इस समय रोने धोने से कुछ लाभ नहीं है। हमने जो प्रतिज्ञा की है कि पिता के बध का मुहम्मद बिन कासिम से बदला लेंगे उसके पूरा करने का प्रयत्न पूर्णतया करना उचित है। वीर बालिका होकर ऐसा कादर बनना उचित नहीं है। सदैव से क्षत्रियाङ्गनाएं अपने सतीत्व का रक्षण करती आई हैं। जिस सतीत्वबल से यह संसार स्थित है, उसी के बल से निस्सन्देह हम भी सफलमनोर्थ होंगी। कृपानाथ, अनाथ रक्षक मधुसूदन ही हमारी इस विपत्ति में, प्राण सङ्कट के समय सहाय्य करेंगे। बाबाजी अभी तक नहीं आये। उनने कहा था कि मार्ग ही में वह किसी न किसी प्रकार और कहीं न कहीं हम

लोगों से आकर मिल जावेंगे।

"कौन जाने वह स्वयं भी किसी आपत्ति में फंस गये हों, यह भी निश्चय नहीं है कि हमारा लिखा पत्र उस कलङ्की निर्द्दय दुष्टात्मा मुहम्मद् तक किसी प्रकार पहुंचे। यदि हम पर बलात्कार किया गया तो हम क्या करेंगी, कोई शस्त्र भी नहीं कि प्राण दे दें। विष भी नहीं कि भक्षण करलें, भोजन भी जो दोनों पहर आता है उसकी भली भांति जांच करली जाती है। प्रहरियों के कारण और कोई भी नहीं आसकता कि जिसको साम दाम तथा किसी प्रकार से हम अपनी ओर मिला लें।" चन्द्रमल्लिका ने रोते २ कहा।

"नहीं, बहिन, नैराश्य की आवश्यकता नहीं, जगज्जननी भगवती हमारी रक्षा-हमारे सतीत्व की रक्षा करेंगी।

ऐसा कह कर दोनों बहिनें आंखें बन्द कर एकाग्र मन से भगवती का ध्यान करने लगीं। बहुत समय तक इसी प्रकार वह अपने एकान्त आराधन में लगीं रहीं। उपरान्त इससे उनके दुःखित चित्त को बहुत कुछ शान्ति प्राप्त हुई और वह फिर चुपचाप बैठकर अपनी दुःखमय अवस्था पर, अपने पूर्व्व सुखमय समय पर मनही मन सोंचने लगीं। कभी स्वदेश, कभी माता पिता, कभी अपनी सखियों का, कभी स्वतन्त्रता का ध्यान उनके मन में आता परन्तु इस समय जो उन पर बीत रही थी उसका उल्लेख लेखनी की शक्ति से बाहर है।"

इसी प्रकार वे नित्य अपने मनही मन नाना विध उपायों का चिन्तवन करतीं। अनेकानेक विचार उनके मन में लय विलय होते रहते। मृत्यु से भी सौगुना कष्ट उनको प्रत्यक्षही था।

धर्म्माभिमानियों, स्वदेशाभिमानी पुरुषों और पातिव्रत-गर्व्वित स्त्रियों, यह पथ बहुत ही कठिन है। अतः सावधान, इसका गर्व्व कभी न करना।

इसी प्रकार उचित समय में यह सब लौंड़ी गुलाम और लूट का सामान बग़दाद पहुंचा। यह सब कुछ हुआ परन्तु माधवी और चन्द्रमल्लिका को उनके उस सहायक की जिसे वह 'बाबाजी' कहती थीं, कुछ भी वृत्तांत न मिला, न बाबा जी स्वयं आये। एक प्रकार से दोनों बहिनों का हृदय नारकीय-असह्य-वेदना का अनुभव कर रहा था।

वहाँ पहुंचने पर विदित हुआ कि जयश्री को ख़लीफ़ा ने अपने भतीजे को दे डाला है परन्तु जयश्री ने यह कह कर कि अभी मेरा चित्त बहुत ही खिन्न है इससे मैं किसी अन्य विषय की इच्छा नहीं कर सकती, न गई।

जिस समय जयश्री को यह वृत्तान्त विदित हुआ कि माधवी और चन्द्रमल्लिका भी बन्दी बनाकर लाई गई हैं, वह बहुत ही खिन्न हुई परन्तु उसने अपने उस विचार को मनही में दबा रखा।

ख़लीफ़ा ने यह विचार कर कि ये तीनों राजकुमारियाँ एकत्र रहने से कुछ स्वस्थ्य होंगी, उनको एकत्र वास करने की आज्ञा दे दी। तीनों की सेवा में परन्तु तीन ही विश्वस्त हिन्दू लौंड़ियाँ और एक रसोईदारिन के अतिरिक्त और कोई नहीं दिया गया तथा पहरे का बहुतही कड़ा प्रबन्ध रखा गया।

तीनों में, बहुत सी बातें भिन्न२ विषय की होती रहतीं जिन में अपने सतीत्व रक्षण के विषय ही में विशेषतः प्रयत्न सोंचे जाया करते थे।

यद्यपि ख़लीफ़ा ने जयश्री को अपने भतीजे को दे देने का हुक्म दे दिया था परन्तु अभी माधवी और चन्द्रमल्लिका के वहाँ पहुंच जाने से वह आज्ञा बन्द कर दी गई।

कुछ दिनों एक साथ रहने के पश्चात् उस सेनापति ने जो ख़लीफ़ा के पास हिन्दुस्थान के तोहफ़े ले गया था। उनको दर्बार में रोबरू हाज़िर करने की अर्ज़ की, क्योंकि अभी तक इनमें से किसी को भी सचमुच ही ख़लीफ़ा ने देखा नहीं था। दर्बार में हाजिर किये जाने पर खलीफ़ा इन तीनों के सौन्दर्य्य पर सम्पूर्णतया मुग्ध हो गया और उनका आश्वासन करने के पश्चात् बोलाः—

"बीती बात पर पछताना बेफ़ायदा है, अगरचे तुम्हें हिन्दुस्थान की याद आती होगी, मगर साथही, मुझे उम्मीदकवी है कि तुम मेरे हरम में दाख़िल होकर बिहिश्त के बतौर आराम पाओगी और सारे रंजीदः ख्यालातों को दिल से दूर कर खुद भी खुश होओगी और मुझे भी फ़रहत पहुंचाओगी"।

खलीफ़ा को (मनही मन) जयश्री के अपने भतीजे को, बिना देखे देदेने पर बहुत अफ़सोस हुआ मगर उसने अपने को यह कह कर संतोष दे लिया कि ये दो हूरें भी उससे किसी तरह कम नहीं हैं। खुदा का शुक्र है कि मैं बड़ाही खुशनसीब हूं कि ये नायाब हूर उसने मुझे इनायत किये।

माधवी, मल्लिका, ने ख़लीफ़ा से अर्ज़ की कि 'जहांपनाह हम आप की सेवा में आने से अपने को पूर्णतया सौभाग्यशाली समझते हैं परन्तु इससे पहिले कुछ अर्ज करना चाहते हैं।"

ख़लीफ़ा–(बहुत खुशी से) हाँ, हाँ, कहो न, क्या बात है।

दोनों बहिनें–जहांपनाह आप की खिदमत में भेजने से पहिले मुहम्मदबिन कासिम ने हमको अपनी ख़िदमत में ले लिया था और हम आपकी ख़िदमत के लायक नहीं हैं।

खलीफा ने ज्योंही यह सुना। उसे अपने शरीर में क्रोधाग्नि के स्फुलिङ्ग उड़ते जान पड़ने लगे। उसने उसी समय अपने हिन्दुस्थानी सेनापति को एक बहुत ज़रूरी फरमान लिखा। उसमें यह लिखा था,–

१८६

बहुत जरूरी।

सुलैमान,

तुम को हुक्म दिया जाता है कि पाजी मुहम्मदबिन क़ासिम को बैल की ताजी खाल में फ़ौरन जीताही सीकर भेज दो। इसकी तामील में देर न हो। फ़कत्

इसके नीचे ख़लीफ़ा ने अपनी मुहर की और उसी वक्त उस फ़रमान को हिन्दुस्थान रवाना किया।

ख़लीफ़ा उस समय ऐसा क्रोधान्ध हो रहा था कि उसको जयश्री के विषय में कुछ कहने सुनने का ध्यानही न रहा और वह वहां से तुरन्त अपने महलसरा को चला गया। वहां पहुंच कर उसने उस सेनापति को जो वह तुहफ़ा लेकर आया था, दो सौ कोड़े लगवाने और शहर से, ऊंट पर बैठा कर तीन गश्त कराने के बाद निकलवा देने के लिये हुक्म दिया और यह भी कह दिया कि अगर वह कभी उसकी राज्य सीमा में देखा जायगा तो तुरन्त बध किया जावेगा।

ख़लीफ़ा को इस विषय पर बहुत ही उदासी हुई। यद्यपि उसका चित्त, उन सुन्दरियों पर मोहित हो गया था, तथापि, मुहम्मदबिन कासिम की ओर के क्रोध से, उसको अन्य विचारही उत्पन्न हुए।

दशम परिच्छेद।

'हारिहरासिंह का पुरस्कार'

मदीय शमनं शास्त्रं खलानां कुरुतेमदूम।
चक्षुःप्रकाशकं तेज उलूकानामिवान्धताम्॥

सम्पूर्ण सिन्ध प्रान्तही नहीं किन्तु अधिकांश पञ्जाब और सिविस्तान के पार्श्ववर्त्ती प्रान्त यवन सेनापति मुहम्मद क़ासिम ने अधिकार में कर लिये थे।

अब हमें कुछ वृतान्त उस स्थान का लिखना उचित जान पड़ता है जहां हमने मुहम्मद बिन कासिम और हरिहरसिंह को बातें करते छोड़ा था।

दूसरेही दिन एक बड़ा भारी दर्बार शाहीखेमें में किया गया, जहाँ जितने साहिब मुसाहिब थे, अपने २ स्थान पर पूरी तड़क भड़क टीमटाम से आ बैठे। आज का दर्बार जिस उद्देश से किया गया है वह यही है कि हरिहरसिंह को ख़लीफ़ा की ओर से खिलअत और खिताब दिया जावे।

धीरे २ दर्बार में सेनापति तथा अन्यान्य अधिकारी अपने आसन पर क्रमशः बैठ गये। एक बहुमूल्य जड़ाऊ सोने की कुर्सी पर हरिहरसिंह बैठे हैं। एक बहुतही भारी सोने का ख़ाली सिंहासन शामियाने के बीचोबीच में रखा

गया है, जिस पर हरिहरसिंह बैठाये जायंगे, ऐसी कानाफूसी इधर उधर सुनी जाती है।

हरिहरसिंह भी मनहीमन असाधारण आल्हादित है। यद्यपि जयश्री के न मिलने के कारण उसे कुछ खेद है तथापि यह भी उसे कुछ न्यून प्रसन्नता का अवसर नहीं है। प्रसन्नता उसके मुख पर प्रत्यक्षही आभासित हो रही है।

मुहम्मद्बिनकासिम ने अपने स्थान से उठ कर कहना प्रारम्भ किया—

"आज जिस वास्ते यह दर्बारेआम किया गया है, उसकी वजह शायद बहुत कम लोगों को मालूम होगी। आज हरि-हरसिंह को ख़लीफ़ा के हुक्म से आलोर का राजा बनाते हैं और यह खिलअत और महाराजा का ख़िताब उन्हीं की तरफ से अता किया जाता है।"

इतना कह चुकने पर खुद मुहम्मदबिनकासिम ने अपने हाथों से खिलअत पहिनाया। हरिहरसिंह ने अदब से सलाम किया और शुकराना अदा करने के एवज़ में एक बेशकीमत जड़ाऊ मसहरी जो कई लाख की थी यवनसेनापति को भेंट में दी। उस दिन वह दर्बार बरख़ास्त किया गया। 'दूसरे दिन आम दर्बार होगा' यह चोबदार ने अन्त में पुकार कर कह दिया।

दूसरे दिन यवनसेनापति को सूचना दी गई कि वह हिन्दू बुड्ढा, जिसे आपने कैद रखने का हुक्म दिया था— नजाने कब भाग गया। उसकी बहुत ढूंढ करने पर भी हम उसे नपा सके कि वह कौन था। हाँ एक चिट्ठी अलबत्तः वहां थी। चिट्ठी पढ़ी गई। उस में यह लिखा था :—

"यवन सेनापति मुहम्मद्बिन कासिम"।

बेशक, हम यह नहीं जानते कि यह चिट्ठी तुम्हारे पास कब पहुंचेगी परन्तु यह निश्चय है कि तुम इसे पा जाओगे, देखो, हिन्दुओं की सहस्त्रों रमणियों पर तुमने बलत्कार किया। तुमको सतित्व का कुछ महत्व नहीं मालूम है। जिस सतीत्व रक्षण के निमित्त हिन्दू-कुल-बालाएं अपना प्राण देना कुछ भी नहीं समझतों उसीका, एक का नहीं, सहस्त्रों का अपराध तुमने लिया है सहस्त्रों अबलाओं को तुमने भ्रष्ट किया। अनगिनती, बालक युवा वृद्धों के रक्तसे तुमने पृथ्वी रंगी। निरपराधों के बध से—तुम अपने को बीर समझ रहे हो—अरे पामर, क्षत्रियों से यदि तुम न्यायपूर्वक समरभूमि में सामना करते तो जान पड़ता। सुन, इसका उचित दण्ड तुझे मिलेगा।

'स्मरणरहे कि स्वदेश, स्वधर्म्म, स्वमर्य्यादा त्यागी, हरिहरसिंह अपने कपट का—विश्वासघात का, धर्म्मद्रोह का दण्ड अवश्य पावेगा। स्मरण रखो कि, यह हरिहरसिंह जो तुमसे मिल गया था निस्सन्देह बड़ा दुष्ट है।

लिखने वाला, कोई—

यह चिट्ठी पढ़ कर मुहम्मदकासिम ने उसी समय हरिहरसिंह को बुलवाया। उसने भी देखा। परन्तु वह उससे तनिक भी बिचलित न हुआ और उससे कहने लगा—"यवनसेनापति, आप भी क्या कापुरुष बने जाते हैं। अगर वह दुष्ट भाग न गया होता तो—

इसी प्रकार सोंचते बिचारते हुए मुहम्मदकासिम ने दूसरे दिन आम दर्बार किया।

आज का दरबार बहुतही धूम धाम से हुआ, अनगिनती मनुष्य दर्बार में एकत्र हुए।

पुनः मुहम्मद्बिनकासिम ने अपनी जगह से उठ कर कहना प्रारम्भ किया।

"महाराजा हरिहरसिंह आज आपके निमित्तही यह दर्बार किया गया है सब लोगों पर प्रगट हो कि हरिहरसिंह पर हम इन सब किलों ऊपर हुकूमत करा देने की वजह बहुत ही खुश हैं और इसी वास्ते ख़िलअत और ख़िताब भी दिया गया है।

देखो हरिहरसिंह–जिन महाराज शिवसिंह के नमक से तुम पाले पोसे गये और बड़े हुए। उन्हीं की भानजी पर तुमने बद्निगाह डाली। अरे बदनस्ल, अपने मुल्क की तुझ में जरा भी हमदर्दी न हुई, हव्बुलवतनी का तुझ में कुछ भी ख़याल न हुआ। तेरे हजारोंही लाखों हिन्दूलोग–हमवतन के लिये मारे गये तेरीही वजह–और तुझे अपने इस नामाकूल नाज़ायज़ इश्क़ की नजर में जो तू अपने मालिक की भानजी से रखता था, कुछ न दीख पड़ा।

जो तूने यह तौफह कई लाख के हमारे नज़र किये हैं यह उसी मालिक के हैं जिसकी भानजी पर तूने बद्निगाह डाली, मुल्क को तबाह कर डाला। नफ़्स परस्त! जब तू अपने हमवतनों का साथी और हमदर्द न हुआ, हव्बुलवतनी तुझ में ज़रा भी न हुई तो तू हम गैरमुल्कवालों से कहाँ-तक वफ़ा करेगा।

इतना कहकर मुहम्मद्बिनकासिम ने हरिहरसिंह को देखा, उसका चेहरा शर्म से पीला हो गया था। मुहम्मद्क़ासिम ने फिर कहना शुरू किया, तुझे खिलअत और ख़िताब हमने अपने वायदे के मुताबिक दे दिया अब हम तुझ जैसे नफ़्सपरस्त (विषयी) और वतनदुद्द (देश शत्रु) को हमेशा क़ैद में रहने की सज़ा देते हैं। तुझे नुचवाना तो कुत्तों से

चाहिये था मगर कुत्ते भी ऐसे नापाक को न सूघेंगे।

यवनसेनापति के सङ्केत से दुरात्मा हरिहरसिंह बन्दी कर लिया गया और वह दर्बार बरख़ास्त हुआ।

कड़े पहरे के इन्तज़ाम में हरिहरसिंह रखा गया। और यवनसेनापति ने दूसरेही दिन गुजरात की ओर विजय करने की इच्छा से अपनी सेना में कूंच की घोषणा कराई जहाँ कि वह यथोचित समय में—कूंच करने लगी।

एकादश परिच्छेद।

'वीर बाप्पा रावल और मुहम्मदकासिम'

अलकाश्च खलाश्चैव मूर्ध्निभीरु जनैर्धृता।
उपर्यूपरिसंस्कारेऽप्याविनतकुर्वन्तिवक्रताम्॥

जिस घटना का उल्लेख गत परिच्छेद् में किया गया है उसको हुए प्रायः वर्ष भर बीत गया है। और मुहम्मदबिन-कासिम, इस कपट पूर्णविजय पर फूलता हुआ, राजपूताने की ओर अपनी सेना बढ़ाये लिये जा रहा है।

इस समय राजपूतों में गूह के पीछे आठ राजा सिंहासन पर बैठ चुके थे जिन में के सब से पिछले को उसके पुत्रों ने बन में आखेट करते समय मार डाला परन्तु सब से छोटा पुत्र जिसका नाम "बाप्पा वा बापा" या भांडीरगढ़ में पहुंचा जहाँ किसी प्रकार उसने अपना बालवस्था व्यतीत किया। उसका उस समय का वृत्तान्त अनिश्चित है। उसकी बाल्यावस्था तथा तारुण्य के समय की अनेकानेक किम्बदन्ति और कथायें सुनी जाती हैं परन्तु उनपर कहांतक विश्वास किया जासकता है। कोई २ कहते हैं कि उसे गड़ेरियों ने पाला।

बापा की मां ने कहा कि तू चित्तौर के राजाओं से सम्बन्ध रखता है जो प्रमर वंश के थे। इस बात के सुनने से उसके चित्त में बड़ा उत्साह उत्पन्न हुआ और उसने अपना वर्तमान काम छोड़ अपने बहुत से साथियों को एकत्र कर सन् ७०० में चित्तौर* की ओर चला। वहां उसका सम्बन्ध प्रकट होने पर बड़ा आदर हुआ परन्तु उस समय के अत्यन्त अभिमानी पुरुषों को,—अधिकारियों को एक नवीन अपरिचित युवा पर प्रजा की ऐसी श्रद्धा करना बहुतही बुरी लगी। और उन्होंने इस विषय पर अपनी बड़ी अप्रसन्नता प्रगट की। इसी समय, एक बड़ा बैरी उनके ऊपर चढ़ आया और राजपूताने के सम्पूर्ण राजाओं को अपनी सेना लेकर सम्मिलित हो कर युद्ध करने की आज्ञा राजाने दी, परन्तु सबने दुष्ट-स्वभाव-बश, मन्त्रणा कर राजा से कहला भेजा कि अपने नवीन मित्रही से सहायता मांगो।

बापा ने तुरन्त चढ़ाई करना स्वीकार कर लिया। ये प्रबल बैरी मुसलमानहीं थे जो कि अबकी बार पहिलेही पहिल हिन्दुस्तान में घुसे थे और कुछ काल पीछे यही देश उनकी राजधानी और निवास बन गया था।

* चित्तौर अथवा चित्तौड़ का क़िला ७० मील उदयपुर के पूर्व ईशान को झुकता हुआ पुरानी तवारिखों में बहुत मशहूर है। आगे वही राजधानी थी। यह किला एक पहाड़ पर जो दीवार की तरह खड़ा है और जहां वह खड़ा न था वहाँ संगतराशों ने सौ २ फुटतक ऊंचा छील कर दीवार की तरह खड़ा कर दिया है, बारह मील के घेर में बना है, उस पर जाने के लिये आध कोस की चढ़ाई का एकही रास्ता है, और उस रास्ते में छः दर्वाजे पड़ते हैं किलेका दर्वाज़ा बहुत

मुसलमानों के मत के स्थापक ने ५६८ ई० में जन्म लिया और चालीस वर्ष की अवस्था में अपने को ईश्वरीयदूत होना प्रसिद्ध किया और खड्ग बल से अन्य मतवालों को मुसलमान करने की ईश्वरीय आज्ञा बतायी। अपने अनुगामियों को अरब के लोगों को जो उजड्ड अवस्था में थे अपने मत में करके अन्य-जातियों को भी अपने मताधिकार में करने के लिये सैन्य एकत्र की और अपनी आयु में जीव बध करना प्रारम्भ किया, पश्चात् उसके उसके स्थापन्न मनुष्यों ने बड़ी धूमधाम से उसे पूरा किया। उसकी मृत्यु के पश्चात् जो लोग कि उसके सिं-हासन पर बैठते गये वेभी उतनाही उद्योग और मत का पक्ष करते थे। उन्होंने दाहिने बायें इतने देश शीघ्रतापूर्वक अपने अधिकार में कर लिये कि किसी अन्य ने न किये होंगे। पचास वर्ष से कुछ न्यूनाधिक समयान्तर में उन्हों ने पश्चिम के सब देशों के प्रबन्ध को बिगाड़ दिया। उनका यह अभि-प्राय था कि उनकाही मत सम्पूर्ण पृथ्वी पर होजाय। उनकी यह कल्पना थी कि मत और देश सम्बन्धी लड़ाई में जो मनुष्य मारे जायंगे उनको स्वर्ग और अप्सरा मिलेंगी।

ऊंचा और पुराने हिन्दुस्तानी डौल का बना है। मुसलमानों की इमारतों से कुछ भी नहीं मिलता, उसके अन्दर कई शिवालय और छोटे २ महल बहुत उमदा बने हैं। उनके प-त्थरों पर नक्काशी देखने लायक है, औरङ्गजेब के पोते अजी-मुश्शान ने उसमें एक मकान मुसलमानों की वज़ह का बना कर उसका नाम फतहमहल रखा है, पानी के कुण्ड उस किले में बहुत इफ़रात से हैं, जो गिनती में चौरासी हैं, पर बारह उनमें से बारहों महीने भरे रहते हैं, सब से अधिक देखने लायक़ वस्तु वहाँ दो कीर्तिस्तम्भ अर्थात् मीनार हैं,

जब कि मुसलमानोंने हब्श, स्याम को जीत लिया हो और ईरानियों का राज्य ध्वंश कर डाला हो बरन् यूरोपको भी अपनाही समझा हो तो इस दशा में यह कब अनुमान में आ सकता है कि हिन्दुस्थान का सा धनवान देश मुसलमानों के आक्रमण से बचता? जिसको प्राचीन कालसे जिस शत्रु ने चाहा, उसीने सिंधु के पार हो तुरन्त अपने अधिकार में कर लिया।

परन्तु जाना जाता है कि यवन मतावलम्बियोंने अब तक अपनी सामर्थ्य ऐसी * दृढ़ न कीथी कि वे इस धनवान देश पर चढ़ाई कर सकते।

छोटा तो टूट गया पर बड़ा चौखूटा नौमरातिबका १२२ फुट ऊंचा मीराबाई के पति राना कुम्भ का बनाया, संगमर-मर का अभीतक खड़ा है, उसके अन्दर हर जगह महादेव पार्वती की मूर्त्ति बनी है, और बहुत उमदा नक्काशी का काम किया है। चढ़ने को उसमें सीढ़ियां हैं, ऊपर चढ़ने से दूरतक नज़र जाती है, किले का आदमियों से खाली और सूनसान होना, हरतरफ टूटी हुई इमारतों का नज़र पड़ना क़िले के अन्दर और पहाड़ के तले दस २ बारह २ कोस तक उजाड़ जंगल का दिखाई देना, और किताबों के लिखे हुए इस किले के पुराने हाल का याद आना, दिलको एक अजब इबरात लगती है।

* इसी किले के अन्दर राजा भीम की रानी पद्मिनी रनवास के साथ सन् १३०३ में अलाउद्दीन बादशाह के ज़ुल्म से अपना सत बचाने के लिये सती हुई थी, और इसी क़िले के अन्दर रानी किरणवती सन् १५३३ में बहादुरशाह गुजरात वाले की दहशत से तेरह हज़ार स्त्रियों के साथ आग में जली थी।

मुसलमानों के पैगम्बर के देहान्त के कई वर्षों के पश्चात् दूसरे ख़लीफ़ा उमर ने ईरान को विजय कर इनला और फुरात नदी के मुहाने पर बसरा नगर इस आशय से बसाया कि मुसलमान गुजरात और सिंधुदेश से, जो सिन्धु नदी के पूर्व्व है—व्यापार कर सकें।

उसने अबुलास को एक बड़ी सेना के साथ हिन्दुस्थान पर चढ़ाई करने को भेजा। वह भारतवर्ष पर आया परन्तु आलौर के प्रथम युद्ध में मारा गया।

उसमान उमर के पश्चात् ख़लीफ़ा हुआ। उसने सिन्धु नदी के तीर के देशोंपर चढ़ाई करने के अर्थ वहां का वृत्तान्त जानने के अभिप्राय से दूत भेजे। परन्तु कई एक विघ्न ऐसे हुए कि जिनके कारण उसकी वह इच्छा पूर्ण न हो सकी। चौथे ख़लीफ़ा अली ने सिन्धु के कुछदेश लेलिये जिसको उसके मरने के पीछे मुसलमानों ने आपही छोड़ दिया। इसभांति अपने समय के प्रारम्भ से मुसलमान भारतवर्ष पर आक्रमण करने की प्रबल इच्छा रखते थे परन्तु वलीद के समय तक चढ़ाई का अवसर कोई भी प्राप्त न कर सके।

बत्तीस हज़ार राजपूत केसरिये बाने पहन कर लड़ाई में कटे थे और इसी क़िले के अन्दर सन् १५६७ में जब अकबर ने उसे घेरा था, उसके क़िलेदार जयमल के मरने पर क़िलेवालों ने जौहर दिखाया था कि जिसमें तीस हज़ार आदमी मारे गये। अब यह क़िला बिलकुल बेमरम्मत और वीरान पड़ा है। इसकी आबादी के लिये लाखोंही आदमियों की फ़ौज चाहिये। क़िले के नीचे चित्तौड़ का शहर जो अब केवल एक क़सबा रह गया है, बसता है।

७०५ और ७१५ ई० के समयान्तर में उसने केवल सिन्धु-देश को ही नहीं जीत लिया किन्तु अपने दल को गङ्गा पर्यन्त ले गया और सम्पूर्ण देश से कर लेने लगा।

इसी ख़लीफ़ा के सेनापतियों ने जिबरालुर के मुहाने से पार होकर योरप में अपना झंडा खड़ा किया था और स्पेनदेश को एकही चढ़ाई में अपने आधीन कर लिया था।

उन्हीं दिनों में मुसलमानों ने गङ्गा और ईबो नदी के तटों पर भी जय पाई थी और यही ख़लीफ़ा यूरोप और भारतवर्ष पर अधिकार करने की इच्छा रक्खता था। वलीद के समय के आक्रमणही से उत्तर भारत कांप उठा। यह भट्टी के बन में भाग गया। अजमेर का बीर चौहान राजा मानिकराय इसी में मारा गया और उसका कनिष्ट पुत्र परकोटे पर तीर लगने से मरा। उस समय जो गहने वह पहने था अब भी राजदूत अपने लड़कों को नहीं पहिनाते।

सूरत के राजाओं से भी उनका अधिकार छिन गया।

प्रियपाठकवृन्द, ख़लीफ़ा के प्रधान सेनापति कासिम के बेटे मुहम्मद का परिचय यथासम्भव सूक्ष्मरीति पर आप को मिलही गया होगा और भारतवर्ष पर ख़लीफ़ा के सैन्य भेजने का हेतु भी अप्रकट न रहा होगा।

वलीद की सेना गंगा पर्य्यन्त पहुंचने के तीन वर्ष उपरान्तही, सेनापति मुहम्मदबिनकासिम ने भारतवर्ष पर दूसरी बेर आक्रमण किया और आलोर, यह दूसरा युद्ध था, जिस में हरिहरसिंह के षडयंत्र द्वारा—महाराज दाहिर की मृत्यु हुई और यवनों की विजयपताका सिविस्तान के प्रान्तों से उत्तर पञ्जाब, —मुलतान, देवाल, नेरू, तथा आलोर में फहराई।

प्रस्तुत होना चाहिये।

तीनों ने कुछ सूखी पत्तियों को, जो पहिचानी नहीं जा सकती थीं जिसे वह अपने पास पहलेही से रखे थीं, खा कर पुनः उसी प्रकार शांत भाव धारण कर लिया।

कुछ यवन-सिलवटों ने उसी समय उनको दीवार में चुनना प्रारम्भ किया। जब उनका सिर मात्र बाहिर रह गया था तो जयश्री ने उच्च स्वर से कहा—"ख़लीफ़ा स्त्रियों के साथ अत्याचार करना कदापि शूरों का कार्य नहीं है। अस्तु हमें अपने ईश्वर दयानिधि मधुसूदन पर विश्वास है कि वह शीघ्रही हमारा इस विपत्ति से उद्धार कर सकेंगे। हम अपने धर्म्म सतीत्व तथा कुलगौरव के निमित्त इस नश्वर शरीर का दीवार में चुना जाना कुछ भी नहीं समझते।"

शीघ्रही दीवार के अन्दर तीनों बहिने * माधवी, चन्द्र-मल्लिका और जयश्री को ख़लीफ़ा की आज्ञा से उन सिलावटों ने चुन दिया और सहस्त्र २ दर्शकों ने देखा कि उनके मुख पर पूर्ववत् श्री अटल थी।

*प्रियपाठक यदि इन तीनों राजकुमारियों, माधवी, चन्द्र-मल्लिका और जयश्री के एक विचित्र चातुर्य्य से जी उठने और महाराज दाहिर के पुत्र जयसिंह के द्वारा पुनः सिन्धु देश का यवनों के चङ्गुल से उद्धार करने का अद्भुत वृत्तान्त पढ़ना हो तो "जयसिंह" नामक उपन्यास देखिये। जो इसी मासिकपत्र में प्रकाशित होगा। यह सम्पूर्ण दुःखान्त घटना उसमें आप सुखान्त से परिवर्त्तित देखेंगे।

धर्म्म, मर्य्यादा, कुलगौरव और श्री कदापि नष्ट नहीं होती। ख़लीफ़ा के चित्त पर इस छल का बहुत बुरा असर पड़ा। कुछ दिनों के बाद न जाने क्यों ख़लीफ़ा ने उस दीवार

परिशिष्ट।

बाप्पारावल की चढ़ाई ही के समय हरिहरसिंह मुहम्मदकासिम की एक प्रेमिका को ले न जाने किसरीति से और कहाँ भाग गया। सिन्धुदेश में कुछदिनों तक अराजकता रही।

परन्तु पुनः राजकुमार जयसिंह ने आलौर पर अधिकार कर लिया। अभी उस अपरिचित का जिसने दीवाल में प्रवेश कर किसीकी लाशको ढूंढा था और पुनः आलौर चला गया था। उसका वृत्तान्त कुछ न जान पड़ा कि वह कौन था और उसने यह कार्य किस अभिप्राय से किया।

हरिहरसिंह का फिर कुछ पता न चला। कुछही समय के पश्चात् यवनों का शासन सिन्ध से पूर्णतया उठ गया।

सम्पूर्ण

की खुदवा कर, उन तीनों के अस्थि—चर्म्मावशेष पञ्जरों को निकलवाया, उन्हें घोड़ों से सारे नगर में घुमाया और फिर उनकी लाशों को दजला नदी में फेंकवा दिया।

प्रियापठकवृन्द अपने सतीत्व, कुल और मर्य्यादा की श्री प्राचीनकाल के समय भारतवर्ष में जैसी थी उसका परिचय अब आप इस कहानी से पा सकेंगे।

ग्रन्थकार।